बुद्धचरित

काशीनाथ

मूल्य डेढ़ रुपया

प्रथम संस्करण : बुद्धजयंती, १९५६

मुद्रक : श्री. वा. ढवळे
कर्नाटक मुद्रणालय
कर्नाटक हाउस, चीराबजार, बम्बई २

प्रकाशक : के. सि. ढवळे
मयूर किताबें
कर्नाटक हाउस, चीराबजार, बम्बई २

१९५४ के ठंडके दिनोंमें शिमलाकी जाकू टेकरीपर अचानक एक फ्रेंच बुद्ध भिक्षुसे मेरी मुलाकात हुई। बाहर अपार हिमपात हो रहा था। आश्रयके लिए हम मंदिरमे पहुँचे। वहाँ पहुँचकर एडविन् ॲर्नोल्डकी 'दि लाइट आफ एशिया' की कुछ अविस्मरणीय कवितायें सुनाकर उस भिक्षुने मेरे मनमें गौतम बुद्ध और बुद्धधर्म के विषयमें कौतुहल निर्माण किया। "आपका देश महान है। २५०० वर्ष पहले इस भूमिमे तथागतका जन्म हुआ। गांधी इसी देशमें पैदा हुए .. धन्य! धन्य!!"

उसके ये उद्‌गार बहुत दिनोंतक मेरे कानोंमें गूँजते रहे। तभीसे बुद्धके विषयमें बहुत-से ग्रन्थ मैने पढ़े। विहारोंमें जाकर जानकारी प्राप्त की। डॉ. बाबासाहेब आंबेडकर, कानूनमंत्री श्री दादासाहेब पाटसकर, श्री. पु. मं. लाड, आय्. सी. एस. जैसोंके साथ भी कुछ चर्चा करनेका अवसर मिला। इसके लिए उनका आभार माननाही चाहिए।

जयंतीके निमित्त खासकर विद्यार्थी वर्गको दृष्टिगत रखकर यह पुस्तक लिखी है।

काशीनाथ

सृष्टि धन्य हुई

हिमालयकी धवल शिखरें आइनेकी तरह चमक उठीं। झरने गिरि-कदराओंसे मतवाले होकर फूट पड़े। सारी सृष्टि धन-धान्य, फल-फूलोसे लद गई। हवाने क्षणभरमें राजपुत्रके जन्मकी खबर चारो ओर पहुँचा दी। मंदिरोमे प्रार्थनाएँ शुरू हुई। लोगोने वन्दनवार सजाये। राजा, रानी और प्रजाजनकी बहुत दिनोकी इच्छा पूरी हुई, इसलिए बालकका नाम सिद्धार्थ रखा गया। सृष्टि धन्य हुई।

लोगोंने वन्दनवार सजाये ।

सिद्धार्थके पिताका नाम शुद्धोदन, माताका माया और कुल नाम गौतम था। शुद्धोदनका अर्थ होता है—शुद्ध चावल! इस आधारपर अनुमान किया जाता है कि सिद्धार्थका घराना किसान रहा होगा। उनके शाक्य वंशीय पूर्वजोंने आसपासके राजाओंको युद्धमें मदद करके छोटी-सी जागीर प्राप्त की थी। शुद्धोदनने अपने बाहुबलसे उसे बढ़ाया। चरित्र और शौर्य इन दो गुणोंके कारण शुद्धोदन प्रख्यात था।

कोशल, मगध (आजका दक्षिण बिहार) और विदेह (आजका उत्तर बिहार) उस समयके मुख्य राज्य थे। अयोध्या, राजगा और मिथिला क्रमशः इनकी राजधानियाँ थीं। इनके मुकाबिलेमें शुद्धोदनकी राजधानी कपिलवस्तु छोटा-सा कोनेका शहर कहा जा सकता है। परन्तु शुद्धोदनके उदार शासनके कारण काशीके उत्तर लगभग सौ मीलपर स्थित इस शहरकी ओर शास्त्री, पंडित, कलाकारोंका अखंड समूह बराबर आता रहा। आस पासका नौ सौ वर्ग मीलका प्रदेश और लगभग पाँच लाख जनता इनके शासनमें थी। रोहिणी इस प्रदेशकी मुख्य नदी है। गंगा भी पासही थी।

ईसासे छः सौ वर्ष पूर्व आर्य और मंगोलियनोंने हिमालयकी तराईमें अपना अड्डा जमाया। वहाँसे वे गंगाकी घाटीमें उतरे। नदीके प्रवाहके साथही साथ संस्कृतिका प्रवाह भी फैला। कुछ इतिहासकारोंका मत है कि शाक्य और लिच्छवी वंशवाले मूलतः मंगोलियन रहे होंगे।

सिद्धार्थकी निश्चित जन्मतिथि कौन-सी है, इस बारेमें मतभेद हैं; परन्तु अनुमान किया जाता है कि ईसवी पूर्व ६२४ में उनका जन्म हुआ होगा। नैपालकी तराईमें लुंबिणीवन उनका जन्मस्थान माना जाता है। कई वर्षों तक यह स्थान अज्ञात रहा। सम्राट अशोकने इसे ढूंढ निकाला और ईसवी पूर्व २४४ में वहाँ एक स्तंभ खड़ा किया। अब यह स्तंभ एक अवशेषके रूपमे खड़ा है।

पिछले ढाई हजार वर्षोंसे बुद्धका नाम इस देशमें गूँज रहा है। वसुदेव और देवकीका पुत्र, नंद-यशोदाके घर आया और उन्होने उसे बड़ा किया, उसी प्रकार सिद्धार्थ द्वारा स्थापित बौद्धधर्म आज भारतके बाहर उत्तर पूर्व एशियाई देशोंमें तिब्बतसे जापान तक और दक्षिणमें लंका तक फैला है। भारतमें सिद्धार्थके जन्मसे लेकर लगभग बारह सौ वर्षों तक बौद्धधर्मकी पताका फहराती रही। ऐसा माना जाता है कि बुद्धने भारतमें नया युग आरंभ किया। उस युगका प्रभाव आज भी प्रकट होता है। सिद्धार्थसे बुद्ध कैसे बने? यह इतिहासका एक सुनहला पृष्ठ है।
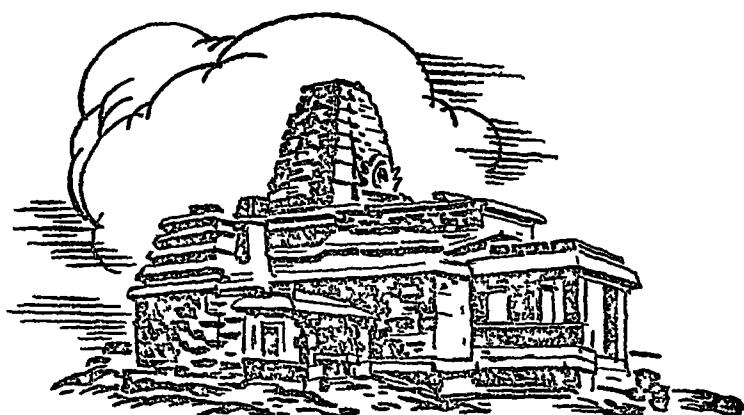
चमत्कारिक परिधि
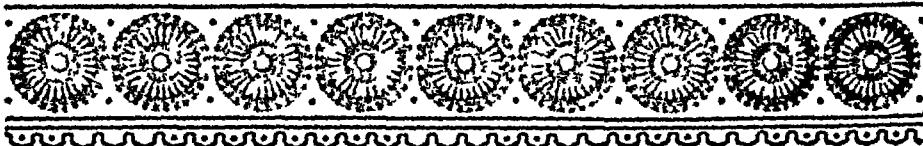
महापुरुषोंके चरित्रमें चमत्कारिक परिधि निर्माण की जाती है। वौद्ध धर्मग्रन्थोमें बुद्धके विषयमें भी इस प्रकारके अद्भुत वर्णन हैं। जन्म सम्बन्धी यह वर्णन देखिये—

रानी माया पालकीसे मायके जा रही हैं। दिन पूरे होने आये हैं। रानीको जरा भी कष्ट न हो, इसलिए राजाने रास्ते साफ कराये, जगह २ विश्राम-स्थल बनवाये। कहीं भी असुन्दर दृश्य, कुरूप स्त्री-पुरुष, दुःखी

नवजात शिशु सेवकोंके हाथसे निकलकर सामने तनकर खड़ा हो गया।

दरिद्र प्राणी रानीकी आँखोंके सामने न आवें, इस बातकी विशेष व्यवस्था की गई। लुम्बिनीवनके समीप पहुँचनेपर रानीकी पालकी रुकी। वह रमणीय स्थान देखकर रानी खुश हुई। एक साल वृक्षके नीचे वह बैठी। रानीका स्पर्श होते ही वह वृक्ष फल-पत्तोंसे लहलहाने लगा। सामने धीरे २ बहनेवाले झरनेमें और भी पानी आ गया। वृक्ष लतायें रानीका अभिनंदन करनेके लिए झुक गये। उसी समय रानीने बिना किसी कष्टसे पुत्रजन्म दिया। देवताओंने बालकपर पुष्पवृष्टि की। सबसे आश्चर्यजनक बात तो यह हुई कि नवजात शिशु सेवकोंके हाथसे निकलकर सामने तनकर खड़ा हो गया। उसने चारो दिशाओंमें कुछ कदम रखे और संपूर्ण विश्वका सम्यक् दर्शन किया। इसके बाद बालकने हवामें सात कदम रखे और घोषणा की—"यह मेरा आखिरी जन्म है"। इस घटनासे ससारके सभी रोगी, दुःखी, दीन-दुर्बलोंके दुःख दूर होकर चारो ओर आनद ही आनद फैला।

पुत्रके मुखपर एक अद्भुत काति देखकर राजा चकित हुआ।

पुत्रजन्मका समाचार पाकर राजा लुंबणीवनमें आया। पुत्रकी अद्भुत कांति देखकर वह चकित हुआ। कपिलवस्तुमें लौटनेपर उसने तमाम राजज्योतिषियों और शास्त्री पंडितोंको बुलवाया। असित नामक एक वृद्ध मुनिने बालकके महान पुरुष होनेके कुल बत्तीस लक्षण बताये। बालकके चेहरेकी ओर देखते २ असित मुनिकी आँखोंसे आसू बहने लगे। राजाने भयभीत होकर पूछा—"महाराज, कोई अशुभबात तो नहीं मालूम हुई?"

"नहीं राजन्! तुम घबराओ मत। मैं बालकके किसी अशुभ लक्षणको देखकर नहीं रो रहा हूँ। मुझे दुःख हो रहा है कि तुम्हारा पुत्र बुद्ध होकर सारे संसारके आत्मोद्धारका नया मार्ग दिखायेगा, पर उस समय मैं न रहूँगा।"

मुनिके इस उद्गार और बालकके शुरुआतकेही चमत्कारपूर्ण चरित्रके कारण राजा-रानी सहित सभी लोग आश्चर्यचकित रह गये। रानीने अपने स्वप्नका हाल बताकर उस आश्चर्यको और भी बढा दिया।

नहीं राजन्! तुम घबराओ मत।
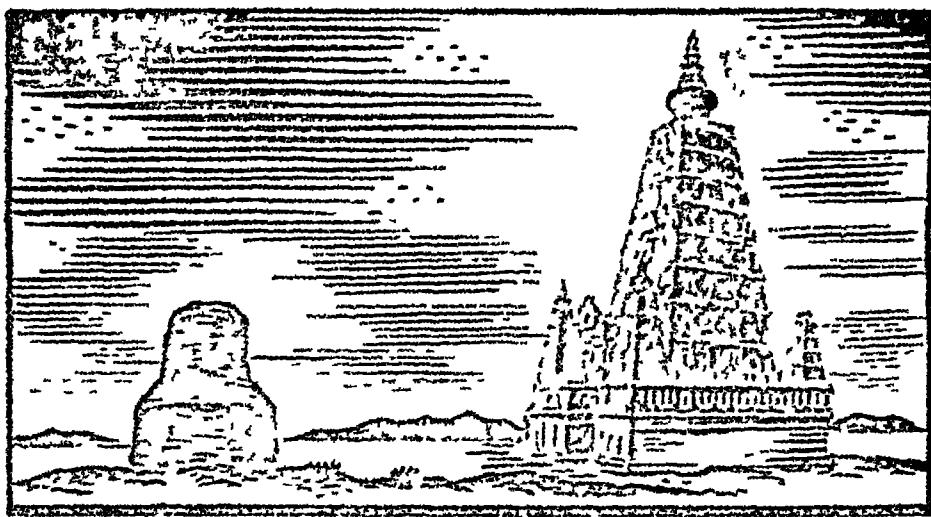
महारानी मायाका स्वप्न
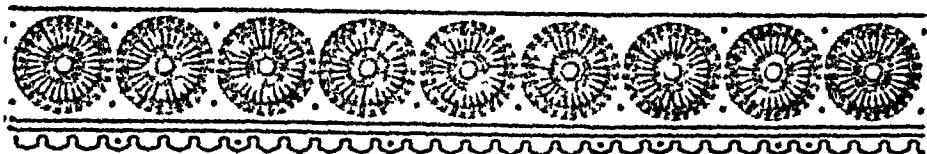
एक बार रातके समय रानी अपने महलकी खिड़कीमें बैठकर चाँदनी की शोभा देख रही थी। वसत ऋतुकी शोभा थी। सामने हिमालयकी पर्वतश्रेणियाँ आकाशगंगाकी तरह लग रही थीं। शुभ्रवसना रजनी सुगंधि विखेर रही थी। धवलगिरीसे एक वायु लहरी आई और रानीके मुखपर परिमल छिड़ककर चली गई। मायाकी पलके भारी हो गई। धीरे २ उसकी आँखोके सामने स्वप्न आने लगे। चार यक्षोंने उसका मच

हिमालयके ऊँचे शिखरपर लाकर रखा। वहाँपर एक बहुत बड़ा वृक्ष खड़ा था। उस वृक्षमें विविध रंगके फूल खिले थे। चार अप्सरायें रानीको एक स्फटिक जैसे तालाबमें ले गई। इस तालाबके लहराते स्वरूपको देखकर रानी घबराई। पर रानीका पद-स्पर्श होते ही तालाबका पानी बिलकुल शान्त हो गया। उस शांत जलाशयमें स्नान करते ही रानीकी कांति अत्यंत निर्मल होकर सोनेके समान चमकने लगी। इसके बाद अप्सराओंके दिए हुए बहुमूल्य वस्त्र-आभूषणोंको पहनकर रानी एक श्वेत महलमें गई। वहाँ स्वर्गके अनेक रंगोंवाले और तरह तरहके सुगंधित फूलोंकी सेजपर वह सोई। रानीके सामने ही एक सुवर्णगिरि था। उस सुवर्णगिरिपर हिमशुभ्र हाथी टहल रहा था। हाथीके सूँढमें एक खिला हुआ चक्रकमल था। हाथी धीरे २ चलकर रानीके पास आया। उसने कमलसे रानीके दाहिने अंगपर हल्का-सा प्रहार किया। उसी समय हाथी भाप बनकर छोटा-सा बादल हो गया। वह बादल रानीके पेटमें पहुँचा। रानीकी नींद टूट गई, उस समय सुबह हो चुकी थी। 'पक्षी चहक रहे थे। पूरबकी ओर किंचित लाली फैल चुकी थी। दूरसे प्रार्थनाके स्वर आ रहे थे—

प्रातर्नमामि तमसः परमर्क वर्णम्
पूर्ण सनातनपदं पुरुषोत्तमाख्यम्।
यस्मिन्निद जगदशेषमशेष मूर्तौ-
रज्ज्वां भुजगम इव प्रतिभासितं वै॥

रानी द्वारा अपने स्वप्नकी घटना बताते ही दरबारके प्रत्येक शास्त्री, पंडित और ज्योतिषी उसका अर्थ लगाने लगे। सबने एकमत होकर कहा कि यह स्वप्न अतिशुभ सूचक है और रानीके गर्भसे पैदा होनेवाला बालक साधारण नहीं है। किसी महान विभूतिने यह अवतार धारण किया है। एक वृद्ध उपाध्यायने कहा कि बालक या तो चक्रवर्ती सम्राट बनेगा अथवा

. . उसने कमलसे रानीके दाहिने अंगपर हल्का-सा प्रहार किया।

संसारका उद्धार करनेवाला बुद्ध होगा। यह बालक एक बूढे, एक रोगी, एक शव और एक योगीके दृश्य एकके बाद एक देखने पर संसार त्याग कर सत्यकी खोजके लिए वनमे चला जायगा। नहीं तो जब तक हिमालय है, तब तक सारे देशपर इसका राज्य फैलेगा और यह दिग्विजयी वीर होगा।

यह सुनते ही शुद्धोदन विचारमग्न हुआ। कुछ देर बाद वह बोला— "हम क्षत्रिय है, वनकी अपेक्षा युद्धमें जाना हमें अधिक पसद है, मेरा पुत्र चक्रवर्ती होगा। मै उसे वैसा बनाऊँगा।"
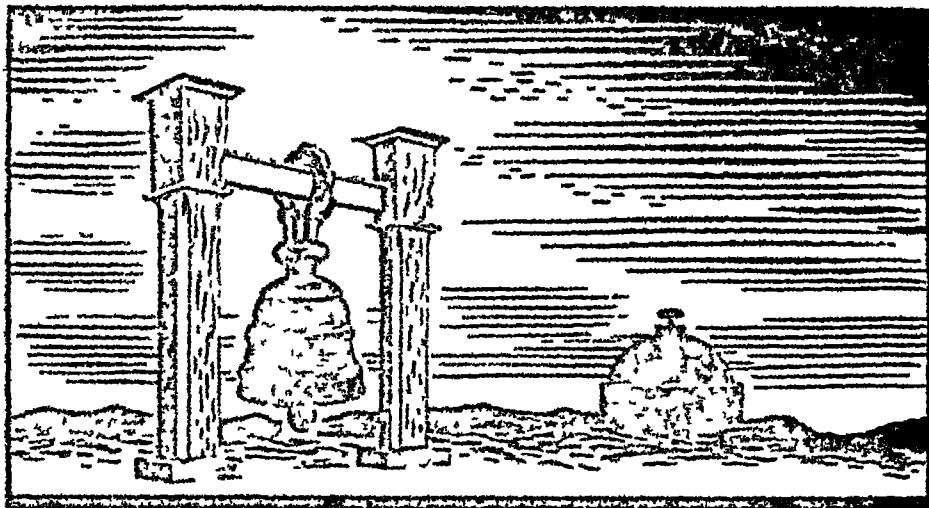
अंतरद्वन्द्व
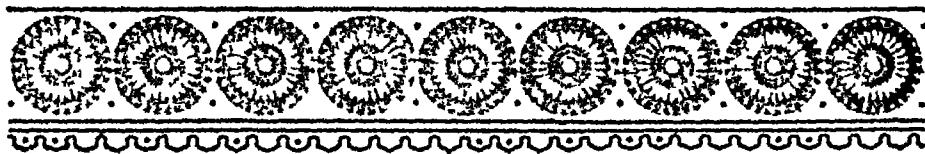
सिद्धार्थके जन्मके साथ कपिल-वस्तुकी सपूर्ण कायापलट हो गई। प्रकृतिने इस भू-भागपर विशेष कृपा की। चावलकी फसल कई गुना बढ गई। फल-फूलोसे हाट-बजार भर गये। राजपुत्रका पौरा मानकर प्रजा धन्यवाद देने लगी।

सिद्धार्थके सात दिनोके होतेही मायाका देहान्त हो गया। मृत्युके समय उसने पुत्रको अपनी बहन और छोटी रानी महाप्रजावती गौतमीके आंचलमें डाला। उसने सिद्धार्थको तमाम दुखोसे दूर रखा।

नैपालकी तराईके नीले आकाशकी छायामें, हिमालयके समीप ओक साल, सुरो, देवदारके घने वनोमें, तराईके हरे धानके खेतोमें और रोहिणी, अचरावती आदि नदियोके प्रवाहके साथ सिद्धार्थका बचपन बीत रहा था। गर्मी बीतते ही शंकरकी जटासे निकलती हुई गंगाकी धारके समान गिरि-कंदराओसे बर्फीली नदियोंका प्रवाह बहने लगता। सूर्य-किरणोके बाणसे हिमशिखरोके अस्थिपंजर हो जाते, घाटियोमें नया संगीत गूँज उठता। वसंत आते ही सृष्टिके कपोलोपर नई लाली चढ जाती। वर्षाऋतुमें चारो ओर हरियाली ही हरियाली नजर आती। ठंडके दिनोंमे फिरसे बर्फ शुरू हुई कि चारो ओर सफ़ेदी छा जाती। वृक्षोके पत्तोपर, घरोकी छतपर, पर्वतोकी चोटियोपर सब ओर बर्फ ही बर्फ! चावलके कन्नोंकी तरह, अभ्रकके चूर्णकी तरह, पत्तियोके पंखकी तरह बर्फ आकर जमती रहती। सिद्धार्थ इन ऋतुओ के चक्र से गुजर रहा था। बीचमें ही वह ध्यानमग्न होता और सृष्टिके अंतिम रहस्य—जन्म-मृत्युके चक्र उसके सामने घूमने लगते। साथियोके मध्य खेलते २ बीचमें ही वह दाव छोड़-कर एकाएक चल देता। घंटो विचार करता। राजाने अपनी ओरसे सिद्धार्थके लिए सारे सुख-साधन एकत्र कर दिये थे, तो भी सिद्धार्थ इस तहर उदास क्यो रहता है, यह बात उसकी समझमें न आती। स्वयं सिद्धार्थने ही आगे चलकर अपने शिष्योको बतलाया कि मेरा बचपन ऐहिक दृष्टिसे अपूर्व

साथियोंके मध्य खेलते २ बीचमें ही वह दाव छोड़कर एकाएक चल देता।

सुखमें बीता। मैं रेशमी वस्त्रोंके परिधान करता, पाँचों पक्वान्न खाता, मेरे सेवक मेरे सिरपर लगातार छत्र लगाये रहते। धूप, हवा और सुख-दुःखोंके उतार चढ़ाव मुझे मालूम न थे। तो भी मेरे अंतःकरणके किसी कोनेमें दुःख छिपा बैठा था?

सिद्धार्थ ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगा, उसका रूप भी अधिकाधिक चमकने लगा। वेद, उपनिषदोंका उसने अध्ययन किया। कहते हैं सिद्धार्थके ज्ञान और प्रतिभाको देखकर गुरु विश्वामित्र भी चकित हुए थे। उस समय विश्वामित्रसे भी सिद्धार्थने अपनी मनोव्यथा नहीं कही थी। संभव है, उस सम्बन्धमें उसे केवल अचेतन ज्ञान रहा हो!
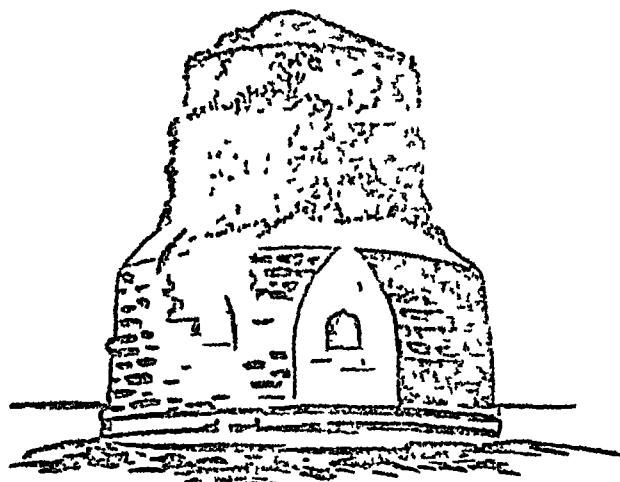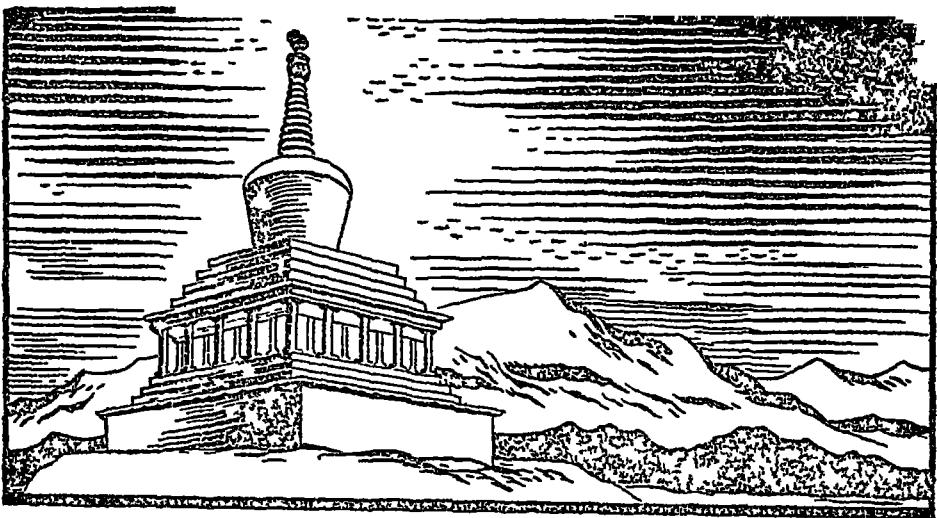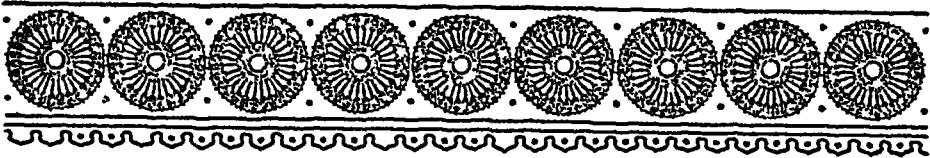
शिव-शक्तिकी भेंट

सिद्धार्थकी उदासीनता दूर करनेके उद्देश्यसे शुद्धोदनने आम दरबारका आयोजन किया। सैकडो राजाओ, महाराजाओ, सरदारो, जागीरदारोको अपनी कन्याओके साथ हाज़िर रहनेका निमंत्रण दिया गया। सिद्धार्थको सुनहले पिंजड़ेमे बन्द कर रखनेका उन्होने षड़यंत्र किया।

तारोसे सारा आकाश ढक जाय, उसी तरह देश-देशांतरकी सुन्दर राजकन्याओसे दरबार खिल उठा। नाना रंगोंके वस्त्र, विविध सुगंधिवाले

फूल, अनेक वेषभूषा और केशभूषा। जैसे सौंदर्यके अनेक रूपोंकी यह सजीव प्रदर्शनी हो। राजपुत्र सिद्धार्थकी कीर्ति सबने सुन रखी थी, जिसके कारण प्रत्येक राजकन्याके मनमें सुप्त आकांक्षाके अंकुर लहरा उठे थे।

दरबारके मध्य भागमें, राजाकी दाहिनी ओर एक सुवर्ण सिंहासनपर सिद्धार्थ बैठा था। उसकी दिव्यकान्तिकी झलकसे रत्न भी लज्जित हुए होंगे। चौड़ा माथा, सुन्दर नाक, चमकती हुई आँखें, कमलकी अधखिली कलियों जैसे हाथ और मधुर मुस्कानके कारण सबका ध्यान उसी ओर लगा था। समारोह शुरू होते ही एक २ राजकन्या सिद्धार्थके सामने आने लगीं। सिद्धार्थ किसीकी ओर आंख उठाकर न देखता। उसके द्वारा दी हुई रत्नोंकी भेंट कांपते हुए हाथोंसे स्वीकार करके प्रत्येक कन्या वापस लौटती रहीं। उसकी दीप्तिसे मानो वे सब ढँक गईं। अन्तमें यशोधरा सामने आई। पारिजात जैसी सुकुमार, चांदनी जैसी शीतल और अप्सरा जैसी सुन्दर उस राजकन्याकी ओर सब लोग एकटक देखने लगे। धीरे २ कदम रखते हुए वह सिद्धार्थके पास पहुँची। सिद्धार्थकी ओर उसने अविचल और निर्भय दृष्टिसे देखा। उसी क्षण सिद्धार्थने भी गर्दन ऊपर की। दोनोंने एक दूसरेका अंतःकरण पहचाना।

यशोधरा एक महान योद्धाकी कन्या थी। मनही मन वह सोचने लगी : सुन्दर राजकुमार वीर भी होगा क्या? इसकी नाजुक बाहुओंमें शत्रुको पराजित करनेकी शक्ति भी होगी क्या? इस बातकी परीक्षा लिए बिना उसके पिताने उसे विवाह करनेकी स्वीकृति न दी थी।

यशोधरा सिद्धार्थके पास पहुँची, उस समय उसके हाथके सारे रत्न बँट चुके थे। वह खाली हाथ था। पर उसने यशोधराको सर्वस्व अर्पण कर दिया था, केवल रस्म अदा करनेके लिए उसने अपने गलेका

उसने अपने गलेका रत्नहार निकाला और यशोधराके गलेमें डाल दिया।

रत्नहार निकाला और यशोधराके गलेमें डाल दिया। सिद्धार्थने अपनी पसंदगी जाहिर की।

अब यशोधराके पिताकी बारी थी। उसने अपनी कन्याका स्वयंवर च और घोषणा की कि सबसे पराक्रमी धनुर्धरको ही यशोधरा वरेगी। शुद्धोदनको चिंता हुई कि अपना नाजुक राजकुमार दूसरोंकी प्रतिस्पर्धामें कैसे ठहर सकेगा। कहीं सिद्धार्थकी हार हुई तो...यह सोचकर यशोधरा भी काँप उठी। परन्तु उसकी अंतर्दृष्टिके सामने शिव-धनुषको आसानीसे तोड़कर रावणका गर्व हरनेवाले धनुर्धर रामकी मूर्ति खड़ी हुई। उसे पूरा विश्वास था कि सिद्धार्थ औरोंकी अपेक्षा छोटा, बच्चा और सुकुमार है, तो भी उसका तेज अलग ही है। उसने उसे मनही मन वर लिया था और अब वह उसके यशके लिए प्रार्थना कर रही थी।

एकके बाद एक राजपुत्र मुक़ाबिलेके लिए मैदानमें आने लगे। बाहुबलकी झङ्कार, धनुषकी टंकार, शंखनाद और जयघोषसे सारा वातावरण गूँज उठा। पर सिद्धार्थ प्रशांत सागरकी भाँति शांत था। अपने सफ़ेद घोड़ेपर वह सवार हुआ। उस वक्त सबकी आँखे उसी ओर मुड़ीं। रणभूमिमें पहुँचते ही वह सूर्यकी तरह चमका। अनेक राजपुत्र उसके सामने पराजित हुए। सिद्धार्थका सौतेला भाई देवदत्त होठ चबाते हुए आया। वह इस शेखीमें था कि मेरे द्वारा बाणसे मारे हुए हंस को देखकर ही घबरानेवाला सिद्धार्थ मेरे सामने क्या टिक सकेगा! परंतु सिद्धार्थने पहले बाणमें उसे घोड़ेसे नीचे गिरा दिया। शुद्धोदनको अपार आनंद हुआ। यशोधराकी आँखोंसे आनंदके आँसू बह निकले।

शस्त्र-सामर्थ्यकी प्रतिस्पर्धा समाप्त होनेपर सिद्धार्थने वाहनका चमत्कार दिखाया। उसका घोडा कंथक जैसे हवाको भी मातकर रहा था। रथके

सिद्धार्थ ने पहले बाणसे उसे घोड़ेसे नीचे गिरा दिया ।

पहिये जमीनसे स्पर्श भी न होते थे । हजारों कंठोंने सिद्धार्थका जयघोष किया ।

विवाहके लिए सिद्धार्थ और यशोधराको आमने-सामने देखकर लोगोंके आनदकी सीमा न रही । मानो वह सूर्य-चन्द्रकी जोड़ी थी, युगो-युगोंसे परस्पर अनुरक्त शिव और शक्तिकी भेंट थी । विवाहके समय सिद्धार्थ केवल सोलह वर्षके और यशोधरा लगभग तेरह वर्षकी थी ।
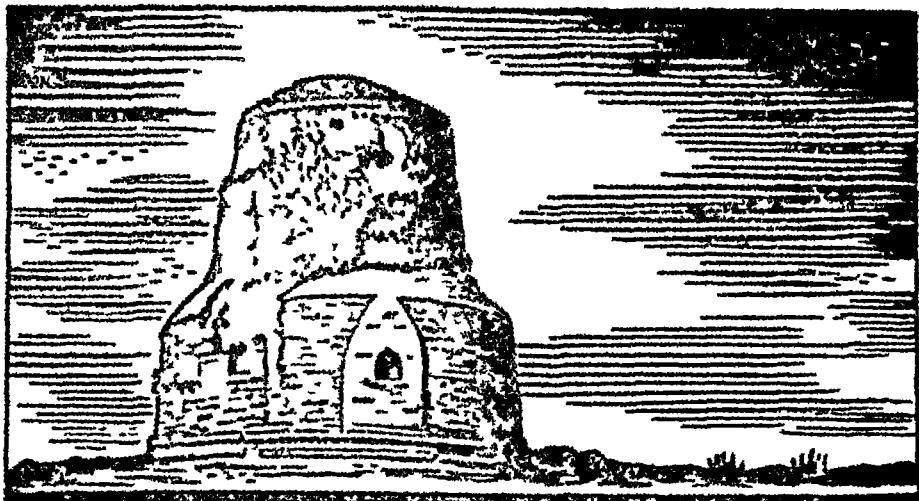
गुलाबका काँटा
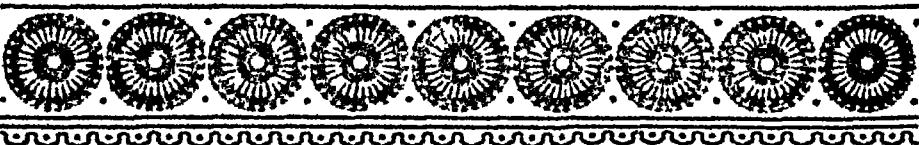
सिद्धार्थ-यशोधराका आपसमें उत्कट प्रेम था। सिद्धार्थके मनमें स्त्रीकी कोमलता और कलीका फूल बनानेकी सुकुमारता थी। दोनोके समय सुखमें किस तरह एकदम बीत जाते! पर यशोधराको यह सुख अखर रहा था। उसे लगता कि सिद्धार्थ बीच-बीचमें मुझपर खीझे, कुछ आज्ञा करे, सेवाका अवसर दे, वे सचमुच पतिकी तरह व्यवहार करे। पर सिद्धार्थ उसे केवल प्रेम देता रहा। अपार और विशुद्ध प्रेम! उसके

मुखसे कभी भी कोई बुरा शब्द, अनुचित बात बाहर न निकलती। यशोधराको वह प्राणपणसे जपता रहा, पर कई बार उसे बिलकुल भूल भी जाता। उसे लगता कि उस प्रेमपाशमे रहकर भी वह तारेकी तरह दूर है। यशोधराकी ओर देखते २ उसकी नजरे झुक जातीं और उसके अंतःकरणमें एक दूसरा ही संसार बन जाता। कई बार घंटों उसे अपना होश तक न रहता। उसकी आत्मा जैसे देहसे निकलकर अंतरालमें भ्रमण करती हो! बेचारी अनजान यशोधराका मन इस शंकासे व्याकुल हो उठता कि मुझसे कोई गल्ती तो नहीं हुई! वह सिद्धार्थको अपने प्रेम, यौवन और सौदर्यके रेशमी धागोसे बाँधनेकी कोशिश कर रही थी। पर वह मुक्तात्मा है, यह उसे क्या माल्रम!

इसी तरह कुछ दिन गुजरे। बादमें सिद्धार्थमें परिवर्तन हुआ। वह यशोधराके पास अधिक समय रहने लगा। उसका मन रखने लगा। दोनो ही हँसते-खेलते दिन बिता रहे थे। हँसते २ सृष्टि बदल रही थी, यशोधरा भी बदल रही थी। उसकी देहलता खिल रही थी। उसके स्वप्निल संसारमें नये-नये चमत्कार दीख रहे थे। अब सिद्धार्थका अस्तित्व वह अपने भीतर अनुभव कर रही थी। राजा शुद्धोदन और रानी महाप्रजावती भी सुखमें निमग्न थे। मन ही मन सबको इस बातकी खुशी हुई कि आखिर एक बार यह मुक्त पक्षी पिंजरेमें फँस ही गया!

सिद्धार्थ अब राजकाजमे भी अधिक ध्यान देने लगा। न्यायकार्योंमें वह शुद्धोदनकी सहायता करने लगा। राजाका बहुत-सा भार हल्का हुआ। राजा इस विचारमें ही था कि अपना लड़का अब नशेसे बाहर आया, वही अपनी गद्दी सँभालेगा और चक्रवर्ती राजा होगा कि एक दिन इस गुलाबी संसारका काटा उसके हाथमें चुभ गया।

एक दिन सिद्धार्थ यों ही राजाके पास पहुँचा और शहर देखनेकी इच्छा उसने जाहिर की। अब राजाको ऐसी स्वीकृति देनेमें कोई भय न लगता था। क्योंकि उसकी रायमें अब सिद्धार्थ गृहस्थीमें अच्छा रम गया था। शुद्धोदनने खुशीसे अपनी स्वीकृति दे दी। सारा कपिलवस्तु शहर अच्छी तरह स्वच्छ करके सजाया गया। राजाने ऐसी आज्ञा निकाली कि सिद्धार्थके सामने कोई भी दुःख-दैन्य न आवे, इसलिए कीमती वस्त्र पहनकर सिर्फ युवक-युवतियां ही हंसते-खेलते रास्तेपर निकलें। दूसरे दिन अपने खास सारथी छन्दकको समझाकर राजाने सिद्धार्थको नगरमें भेजा। सिद्धार्थका सुवर्णरथ रास्तेसे जाते समय लोग उसपर पुष्पवृष्टि कर रहे थे। स्वागत गीत और जयघोषसे आकाश गूंज रहा था। प्रजाजनोंका यह आनंद देखकर सिद्धार्थ भी आनंदित हुआ। उसने मनही मन कहा—"सचमुच संसार कितना सुंदर है! कितना सुखी है!" उसके मनके ये उद्गार मनमें ही रहे कि कौन जाने कहांसे एक जराजर्जर वृद्ध उसके सामने आया। समयने उसके शरीरपर अपने आघातके निशान बना दिये थे। शरीरके फटे हुए कपड़े चीथड़े हो चुके थे। चलते समय हाथ-पांव कांपते थे। सिर हिलता था। लकड़ीके सहारे वह किसी तरह आगे चल रहा था। गरम हुआ कांच जिस तरह पानीकी एक बूंद पड़कर तड़क जाय, उसी तरह सबके सुख-स्वप्न नष्ट हो गये!

"छन्दक, बहुधा मनुष्य इतने कुरूप और घृणास्पद होते हैं क्या?" सिद्धार्थने बालसुलभ जिज्ञासासे पूछा।

छंदक कांप उठा। वह अचकचाया। क्या उत्तर दे उसकी समझ में न आया। किसी दैवी शक्तिके कारण ही उसके लिए बोलना संभव हुआ होगा! राजा शुद्धोदनने अपूर्व प्रयाससे मानव-जीवनका दूसरा पहलू सिद्धार्थसे छिपा रखा था। आज वह पहलू सिद्धार्थके सामने साक्षात् खड़ा

एक जराजर्जर वृद्ध उसके सामने आया ।

था। छन्दक को लगा कि कदाचित यह भी कोई दैवी शक्ति हो और बूढ़ेका रूप धारण करके सिद्धार्थको सत्यज्ञान करानेके लिए अवतरित हुई हो। वह बोला—" राजकुमार, वह एक बूढा व्यक्ति है। युवावस्थामें वह भी सुदर था। "

सिद्धार्थ : क्या मतलब ?, सभी आदमी इसी तरह बूढ़े और कुरूप होते है क्या ?

छन्दक : जी महराज! सबकी यही दशा होती है!

सिद्धार्थ : तो फिर छन्दक, जीवन सिर्फ सुन्दर नही ? मुझे इसमें कुछ आनंद नही लगता! चलो, रथ लौटाओ। "

सिद्धार्थका रथ महलमें आया, उस समय छन्दक उदास था। सूर्य बादलोमें छुप जानेके कारण भर दोपहरीमें भी अंधकार फैल गया था। सिद्धार्थका मुख उतरा था। वह अकेले ही महलसे निकल गया। बाहर बहुत देर तक वह विचारमग्न बैठा रहा। राजा शुद्धोदन, रानी महाप्रजावती

और यशोधराको नगर परिक्रमाकी घटना मालूम होनेपर बहुत बुरा लगा। राजा तुरंत पुत्रके पास आया और उसे समझाने लगा। पर सिद्धार्थके अन्तःकरणमें जो आघात हुआ था, उससे उसके हृदय-वीणाके तार टूट गये थे। खुशी बुझ चुकी थी। वह किसीसे बोला नहीं और न तो अपनी जगहसे हिला।

राजाकी आज्ञा पाकर दूसरे दिन सिद्धार्थको फिरसे नगरमें ले जाया गया। इस बार राजाने स्वयं सावधानी रखी थी। पर इस बार
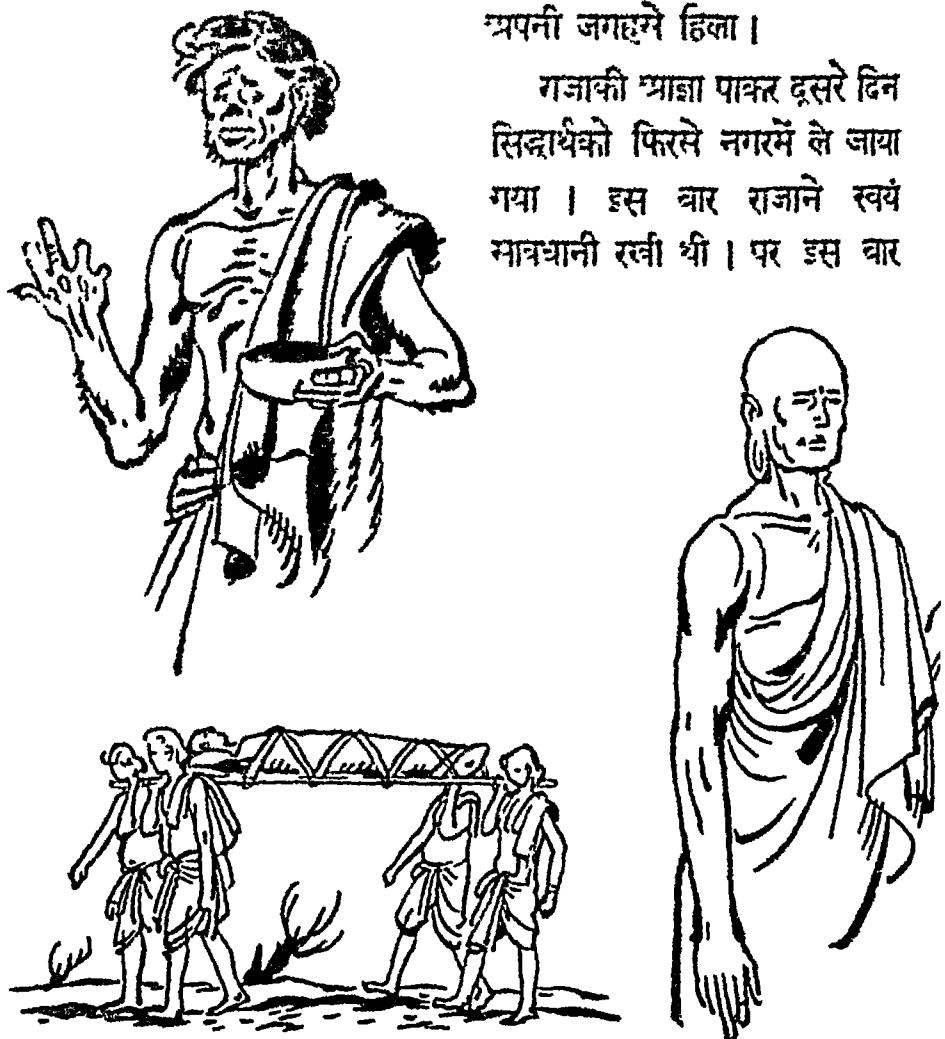
क्रमशः एक रोगी, मुर्दा और एक योगी सिद्धार्थ के सामने आये।

भी जो होना था वही हुआ! क्रमशः एक रोगी, एक मुर्दा और एक योगी सिद्धार्थके सामने आये।

"छन्दक, हरेक की मृत्यु होती ही है?" सिद्धार्थने पूछा।

"जी महाराज, जिन्होने जन्म लिया है, उनकी मृत्यु होती ही है।"

सिद्धार्थके अंतःकरणमें आर एक आघात हुआ। घर आनेपर वह अब तककी आयुमें पहली बार पितासे नाराज हुआ—"आपने मुझे झूठा विश्वास दिलाया। मेरे चारों ओर नकली सुखोंका घेरा खड़ा किया। मुझे लगा कि सुख, सौदर्य और यौवन ही जीवन है। पर वह केवल मृगजल था। अब मुझे जीवनके दोनो पहलू मालूम हुए। मै स्वयं शाश्वत सुख और सत्यकी खोज करूँगा।" सिद्धार्थ गरज उठा। उसकी आँखोमे जलते अंगार थे। सिद्धार्थका यह नया रूप देखकर राजा काँप उठा। उसे राजज्योतिषीका भविष्य-कथन स्मरण हो आया।
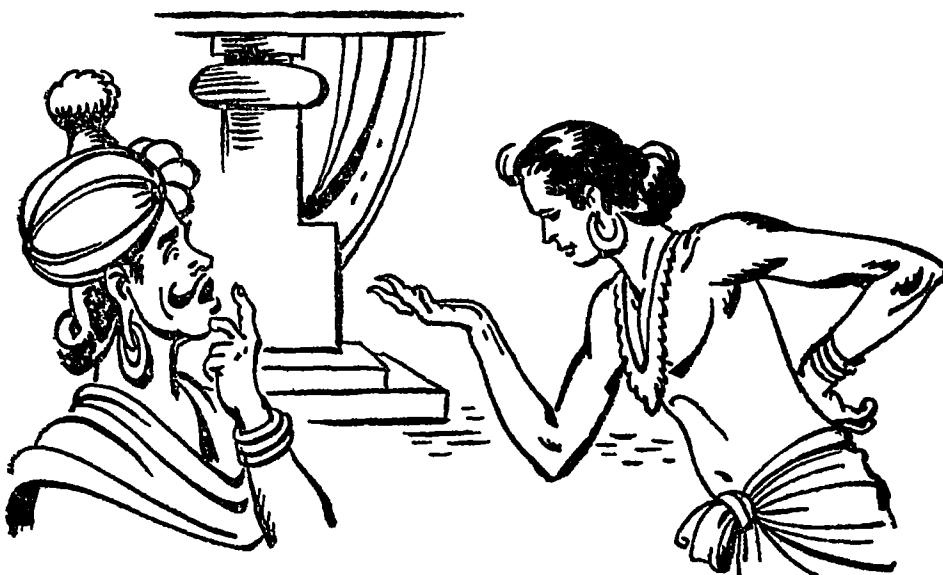
"आपने.. मेरे चारों ओर नकली सुखोका घेरा खड़ा किया।
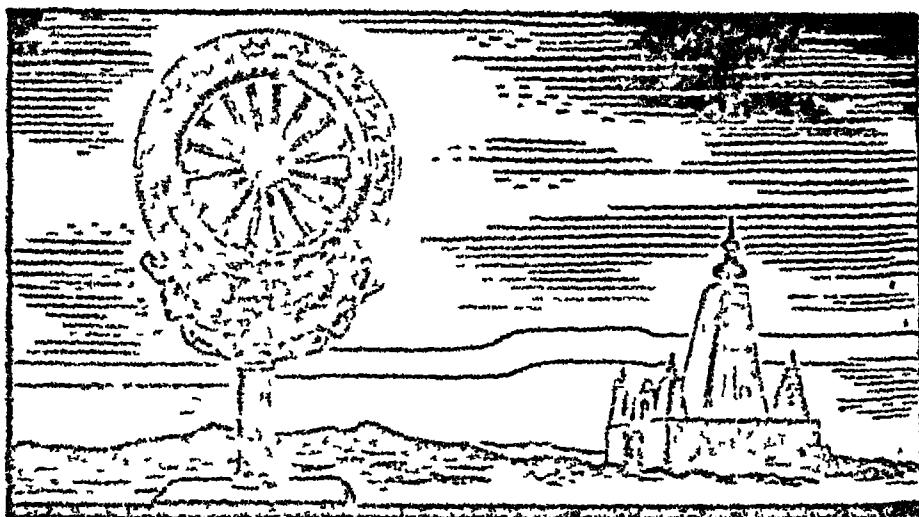
बन्धन-मुक्ति
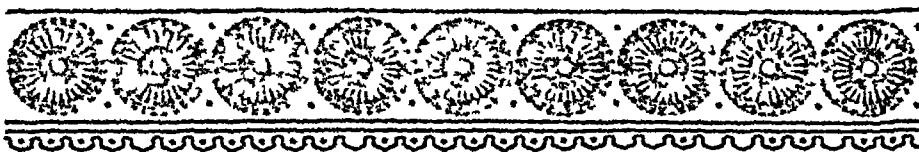
राजमहलमें आनद ही आनद फैला है, संगीतके स्वर गूँज रहे हैं, नर्तकीके नूपुर वज रहे हैं, इत्रकी सुगंधि उठ रही है, मदिरोमे घंटा-ध्वनि हो रही है; शख, भेरी, तुरहीसे आकाश गूँज उठा है, महलके वड़े २ झाड़-फानूसके प्रकाशने तारोको लज्जित कर दिया है, मानो पृथ्वीपर स्वर्ग अवतरित हुआ हो। सवके मुखपर एक ही वात है—राजपुत्र सिद्धार्थको पुत्ररत्न हुआ।

सिद्धार्थ बागके वृक्षके अंधेरेमें अकेला चक्कर काट रहा था।

राजा, रानी, मत्री और प्रजाजन सबको अत्यंत आनंद हुआ। यशोधराके मुखारविन्दुपर संतोषकी रेखा थी। पर सिद्धार्थ? वह बगीचेके वृक्षके अंधेरेमें अकेला चक्कर काट रहा था? उसके अंत:करणका संघर्ष अधिक तीव्र हो उठा था। सेवकोने बड़ी प्रसन्नतासे जब पुत्रप्राप्तिकी खबर उसे सुनाई, तो उसी समय मानो उसके अंतर्विश्वका दरवाजा एकदम खुल गया। अंत:करणके मध्य भागसे एक प्रतिध्वनि गूँज उठी: "यह एक और बन्धन! मुझे तोड़नाही चाहिए!"

सिद्धार्थने वहींसे सेवकोको आज्ञा दी कि बालकका नाम राहुल रखो। इसके बाद वह बहुत देर तक अपने आप 'राहुल, राहुल, मुक्ति, मुक्ति' बड़बड़ाकर तिलमिलाता रहा।

रात समाप्त हुई, सुबहकी शीतल हवा चलने लगी। प्रकृति जागृत होने लगी। खुशीके पंख फूट पड़े। फूल-पत्ते खिल उठे। सिद्धार्थके मनका संघर्ष समाप्त हुआ। रातकी तूफानके चिन्ह भी उसके चेहरेपर न थे। हृदयपर ऊषाकी प्रभा बिखर गई थी। मनमे निश्चय हो चुका था। आँखोके सामने तेज आ गया था। सुबह होते ही वह राजाके पास गया। पुत्रके चेहरेकी प्रसन्नता देखते ही शुद्धोदनको आनंद हुआ।

"बेटा सिद्धार्थ, लगता है चिन्ताके बादल खत्म हुए।" पिताने ममतासे पूछा।

"जी, पिताजी, चिन्ताके, दुःखके, खेदके बादल चले गये। अब मेरे सामने स्वच्छ सूर्य प्रकाश है। मेरा रास्ता मुझे मिल चुका है। वनमें जाकर अपने खोये हुए श्रेय, मनमें चुभनेवाले कारणकी खोज मैं करूँगा, मुझे आशीर्वाद दीजिए। मेरा मन सुख-दुःखसे ऊपर, शान्तिके लिए स्वर्ग, पृथ्वी और नरकसे भी परे अमरत्वको और शाश्वत सत्यको पानेके लिए उत्सुक है। मुझे आपके इस राज्यका यहाँके भोग-विलासका मोह नहीं। यहाँ रहकर भी मैं रेगिस्तान की मछलीके समान तड़प रहा हूँ। पिताजी, तुम्हारा होकर भी मैं तुम्हारा नहीं। अन्तर्द्वन्द्वसे मैं घायल हूँ। आपकी और स्वयं अपनी मैं घोर वंचना कर रहा हूँ। मुझे जाने दीजिए।

पुत्रकी बातें सुनकर शुद्धोदनपर मानो बिजली गिरी। उसका सारा शरीर काँप उठा। "यहाँ से चलो, दुबारा इस बातकी चर्चा न करना। इतना ही वह किसी तरह बोल सका और झटपट अपने आपको संभालकर मच पर बैठ गया। क्या सचमुच सिद्धार्थ वनमें चला जायगा? वह हमारी तमाम आशा-आकांक्षाओंको चकना चूर कर देगा? क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ यह राजपुत्र भगवा वस्त्र धारण करनेवाला योगी होगा? सिद्धार्थ, उसके अंतःकरणने आवाज दी और वे शब्द मन्द होकर मानो अंतरालमें विलीन हो गये। चारों ओर शून्यता फैल गई।
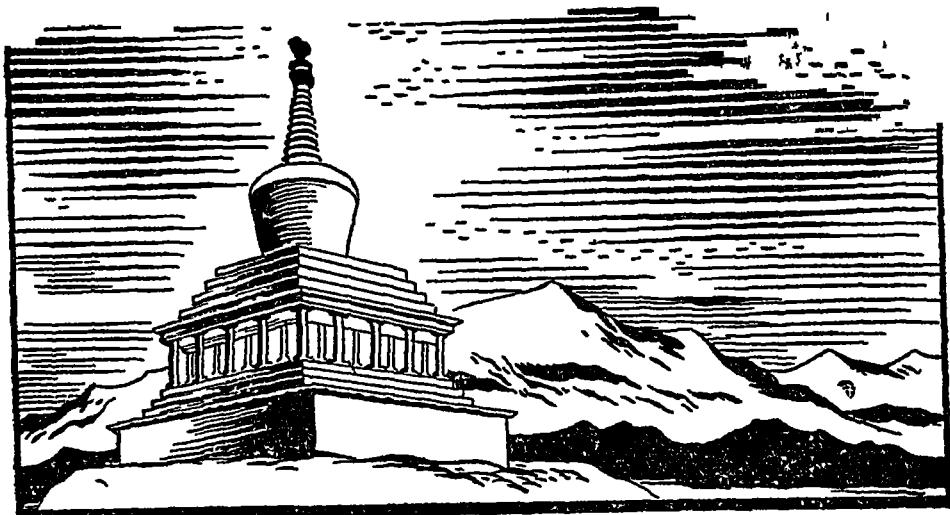
नींदसे जाग्रतिकी ओर
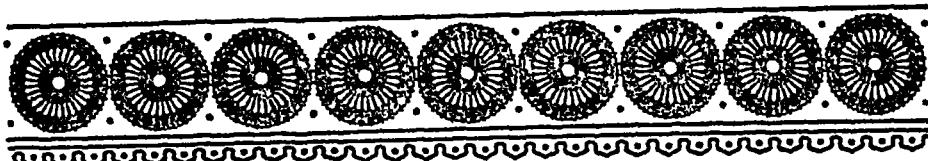
पिताकी आज्ञा पाकर सिद्धार्थ भारी पावोंसे अपने महलकी ओर लौटा। सिद्धार्थको इस बातका दुख हुआ कि पितापर अत्यंत प्रेम होते हुए भी उन्हे दुखी करनेका अवसर आया। उसके नये मार्ग पर एक अचानक और गूढ शक्ति आड़े आ रही थी।

इसके बाद एक रातकी घटना है—झाड़फानूसकी ज्योति बुझ चुकी थी। नर्तक-नर्तकियाँ आराम कर रहे थे। बालक राहुलको

सिद्धार्थ एकटक अपनी पत्नी और पुत्रकी ओर देख रहा था।

बगलमें लेकर यशोधरा सुख-स्वप्न देखते सो गई थी। बालकके चेहरे पर हर्ष-विषादकी लहरें आ रही थीं। कॉपते हुए दीयेके प्रकाशमे वह कभी हँसता हुआ दीखता, तो कभी उसका चेहरा रुँआसा हो जाता। यशोधराके श्वास-स्पन्दन तेजीसे चल रहे थे। उसे कोई अशुभ स्वप्न तो न आ रहा होगा! सिद्धार्थ एकटक अपनी पत्नी और पुत्रकी ओर देख रहा था। बीचमें एक बार उनका मन सोचता कि अपना सर्वस्व अर्पण करनेवाली पत्नीको छोडकर सिद्धार्थ वन जायगा क्या? और यह नन्हा-सा बालक किसका मुँह देखेगा? सिद्धार्थका निश्चय डिगने लगा। उसे प्रतीत हुआ कि अवयवोके जोड टूट रहे है और वह

मिट्टीके ढेरके समान नीचे बैठ रहा है! मनमें आया कि पत्नीको जगाकर मनका संघर्ष कहूँ। पुत्रको हृदयसे लगा कर आँसू बहा लूँ। उसके मनमें ये विचार चक्कर काट रहे थे कि मै उन्हे धोखा दे रहा हूँ। जाय कि न जाय, इस विचारमें वह बहुत देर तक बैठा रहा। इसके बाद उसकी निगाह सामनेके दीवानखानेकी ओर मुड़ी। वहाँ उसके दास-दासियाँ, नर्तक-और कलाकार अस्त-व्यस्त पड़े थे। उनका विकृत शरीर और नींदके कारण विद्रूप हुआ चेहरा देखकर सिद्धार्थका संसार-त्यागका निश्चय पुनः जागृत होने लगा। प्रखर दीपकके प्रकाशमें वस्त्र-आभूषणोंसे सुसज्जित 'वही शरीर सौदर्यका पुतला लगता है'। पर थोड़ी नींदमें ही उसका सच्चा स्वरूप प्रकट हो रहा है। मृत्युके बाद तो इस संसारका सारा सौदर्य झड़ जाता है। एक क्षण पहले ऐश्वर्यके शिखरपर रहनेवाला शरीर मिट्टीमें मिल जाता है। हमे जन्म-मृत्युके इस दुष्ट चक्रको नष्ट करके उसके आगे जाना चाहिए। शाश्वत सुख और सत्यका मार्ग दुसरो को भी दिखाना चाहिए। यह सब विचार उसके मनमे उठने लगे। अब वह अपनी पत्नी और पुत्रको भूल गया। उसके अंतःकरणका मायाजाल एकदम टूट रहा था।

किसी तीरके समान वह महलसे निकला। बरांडेमें भी उसके पाँव न रुके। आँखोकी कोर भी गीली न हुई। साँप जितनी आसानीसे अपनी केचुली छोड़ता है, बच्चे विना तकलीफ के जैसे अडेसे बाहर निकलते है, उतनी ही आसानीसे वह अपना संसार-कवच त्याग चुका था।

सिद्धार्थ तुरंत अस्तबलकी ओर गया। उसकी हल्की आवाज़ सुनकर इमानदार सारथी छन्दक जाग उठा। "कौन राजपुत्र? इस भयानक रातमें तुम अकेले यहाँ कैसे? तुम्हारे मनमें क्या है?" सारथीने भयभीत होकर पूछा।

"मित्र छन्दक, तू शीघ्र कन्थक को तैयार कर। इस समय मैं तुमसे कुछ नहीं कह सकता। एक बार तू मेरी आँखोंकी ओर देख, बस तुझे सब कुछ मालूम हो जायगा।" सिद्धार्थने उत्तर दिया।

छंदकने सिद्धार्थकी ओर देखा। उस समय उसके विशालनेत्रोंसे वडवानल जलता हुआ प्रतीत हुआ। उसे लगा कि उस वडवानलकी ज्वालासे सारी सृष्टि तो भस्म न हो जायगी! पर दूसरे ही क्षण उसे अमृत वर्षा होती हुई प्रतीत हुई। किसी पागलके समान छन्दक रथ तैयार करने लगा। कंथक भी जैसे सब कुछ समझ चुका था। क्योंकि वह बिना हिनहिनाये तैयार हुआ। सिद्धार्थ को लेकर तेजीसे रथ वनकी ओर निकला। सब सेवकोंकी काल-निद्राके समय संसारके गर्भ में यह क्रान्ति हो रही थी। नगरके बाहर आते ही अपनी राजधानी और महलकी ओर मुड़कर सिद्धार्थने अपने आप कहा—"वृद्धावस्था, रोग और मृत्युपर विजय प्राप्त किये बिना मैं वापस न लौटूंगा"

वह नींदसे जागृति की ओर जा रहा था!
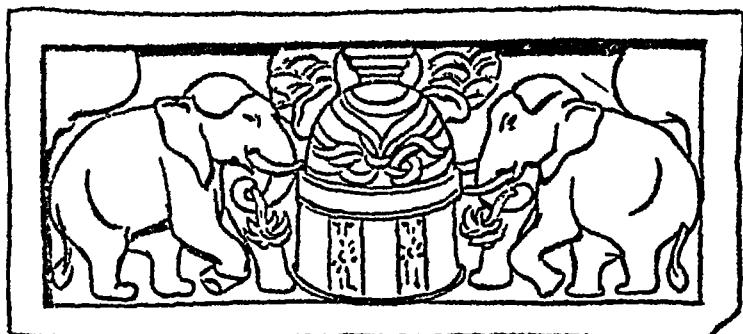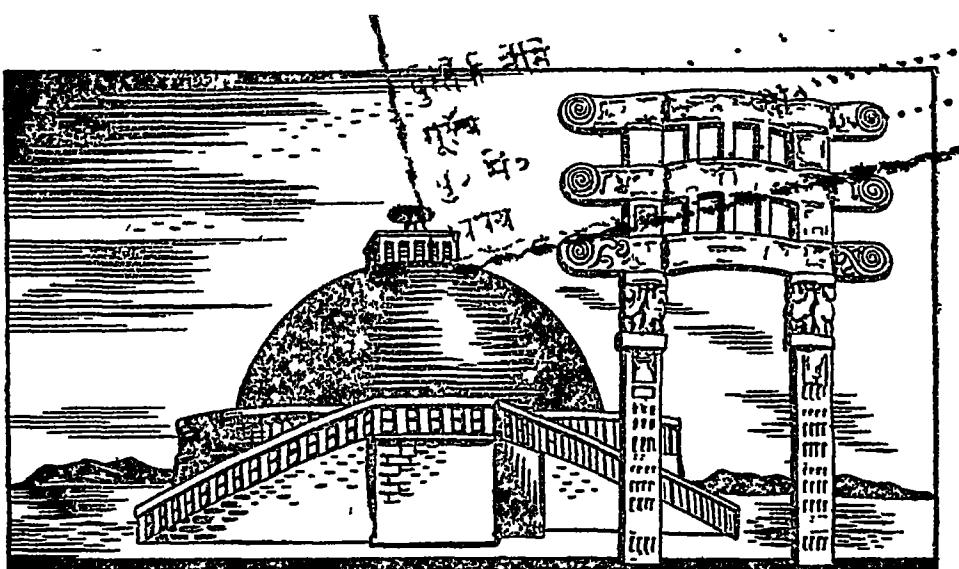
शाश्वत सुखके लिए
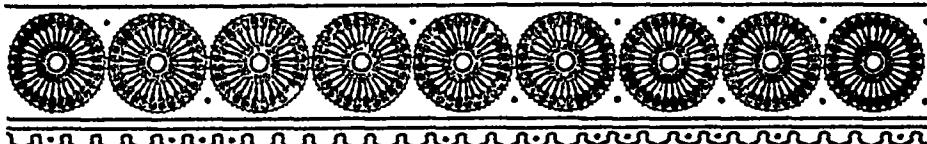
वनकी सीमा तक पहुँचते ही सिद्धार्थने छन्दकसे विदा ली। छन्दकका मन भर आया। सिद्धार्थके पावोपर उसने सिर झुका दिया। सिद्धार्थके चरण उसकी आँसुओसे धुल गये। "हे राजपुत्र, जिस माता-पिताने तुझमे अपने मनोरथोंकी सिद्धि देखी, उनके लिए तू वापस चल। तेरे वियोगसे तेरी युवती और स्नेहमयी पत्नीको क्या लगेगा। तेरे नवजात बालकको तेरी छायाकी जरूरत है। तेरी प्रजाको कौन सात्वना देगा?" छन्दक हकलाकर बोल-रहा था।

सिद्धार्थ क्षणभरके लिए स्तब्ध रहा। बोला : "तू केवल मेरा सारथी ही नहीं, मेरा मित्र भी है। अपनी मनोव्यथा मैं तुमसे कह सकता तो मुझे भी हल्का लगता, पर मैं क्या करूँ! तुमसे क्या बताऊँ! मित्र, प्रत्येक मनुष्यके जीवनमें एक ऐसा अवसर आता ही है कि जब वह अपने तमाम प्रियजनों तथा घर-बारका त्याग करके चल देता है। मृत्यु किसी को भी मॉफ नहीं करती। जब यहाँ कुछ भी शाश्वत नहीं, वास्तवमें अपना नहीं और जिसे कभी भी छोड़ना ही पड़ेगा, तो उसे स्वेच्छासे क्यों न त्याग दूँ? तुम मेरी माता, पिता और पत्नीसे कहना कि जिसे मेरे पाससे कोई भी चुरा न सकेगा, ऐसी शाश्वत वस्तुकी खोजमें मैं निकला हूँ। और उनके आंसू पोछना!"

सिद्धार्थने अपना रत्न-जड़ित हार छन्दकके गलेमें डाल दिया। कंथककी पीठपर हाथ फिराया। स्वामीके स्पर्शसे वह ईमानदार घोडा सिहर उठा। उसकी आखोंमें भी आंसू छलक आये। सिद्धार्थने म्यानसे अपनी तलवार निकाली और अपने रेशमी बालोंको काटकर उसे छन्दकके हाथमें दे दिया। उस हृदय विदारक दृश्यकी गभीरताको कम करनेके लिए सिद्धार्थने मजाकमें कहा : "सन्यासियोको ऐसे मखमली बाल शोभा नहीं देते। सच है न छन्दक!"

सिद्धार्थने अपना रत्नजडित हार छन्दकके गलेमें डाल दिया।

इसके बाद उन्होने अपनी तलवार फेक दी और कहा— "यदि मै बुद्ध हो सकूँ, तो यह तलवार हवामे ही तैरती रहे!" किंवदती है कि सचमुच तलवार ऊपर ही ऊपर लहराती रही।

छन्दक सिद्धार्थके आभूषण और बालोको लेकर घरकी ओर लौटा। सिद्धार्थने एक भिखारीको अपने सुन्दर वस्त्र दिए और उसके फटे वस्त्र स्वयं पहने। उस निर्जन वनमें वह आगे २ चल रहा था।

सिद्धार्थने एक भिखारीको अपने सुन्दर वस्त्र दिए।

इस बातके प्रमाण मिलते है कि संसार-त्याग करनेके समय सिद्धार्थकी उम्र उन्नतीस वर्ष की थी और राहुल एक वर्षका भी न हुआ था।

उधर महलमे बीचमे ही यशोधराकी नींद टूट गई और उसने सिद्धार्थकी ओर देखा। उसे लगा कि मंचके बिछौनेको स्पर्श भी नहीं हुआ है। उसने महलमें चारो ओर दृष्टि दौड़ाई पर सिद्धार्थ न दीखा। वह बगीचे की ओर दौडी। पर सिद्धार्थ वहाँ न था। वह मूर्छित होकर गिर पड़ी। राजा-रानीको मालूम होते ही दौड़कर आये। राजाने सब दिशाओमे सेवक भेजे। इतनेमे उतरे चेहरेसे छन्दक राजमहलमें पहुँचा। उसने सारी हकीकत बताई। राजा शुद्धोदन पृथ्वीपर गिर पड़ा। रानी पछाड़ खाकर रोने लगी। यशोधराकी आखोसे आँसू निकले। सारी कपिल-वस्तु नगरीपर दुखकी छाया फैल गई।

यशोधराने सिद्धार्थके मुलायम बालोको हृदय से लगाया। अपने सभी आभूषण, कीमती वस्त्र तथा शृंगारकी चीजे फेक दीं।

"अपने पतिके समान मै भी सन्यास व्रत स्वीकार करूँगी। आजसे मै ज़मीन पर सोऊँगी और पक्वानोका स्पर्श न करूंगी।" उसने प्रतिज्ञा की। अब उसका सारा समय व्रत-उपवास, भक्ति, पतिके चिन्तन और पुत्रके लालन-पालनमें बीत रहा था।
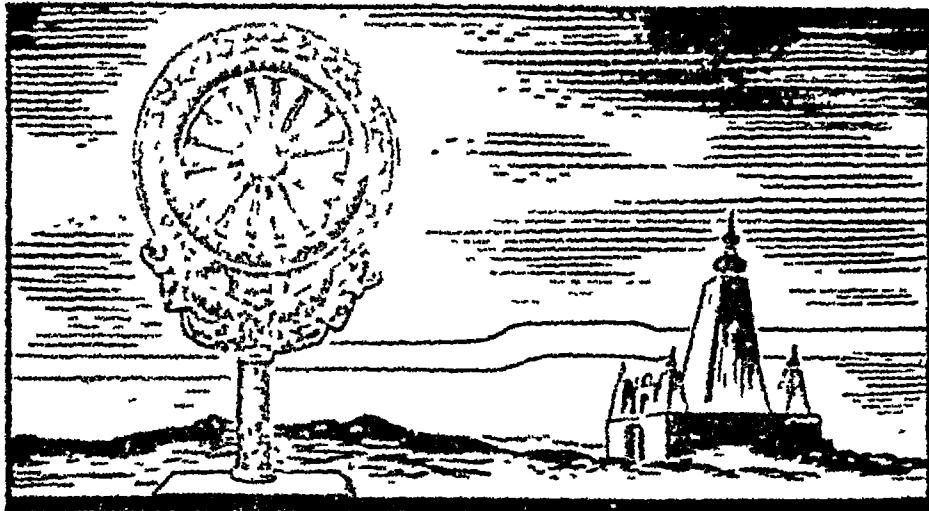
आश्रममें आगमन
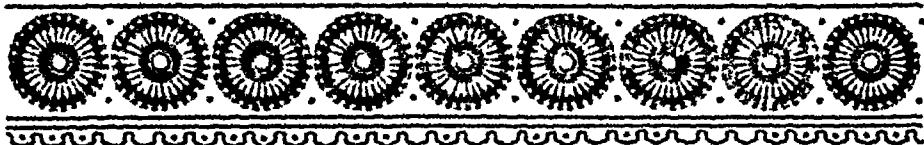
सिद्धार्थ कई दिन और रात निरंतर चलता रहा। प्रवासके कष्टोसे उसकी सूरत ही बदल गई थी। तेज धूपके कारण उसका सुन्दर शरीर जैसे झुलस गया था। काँटे, कंकड-पत्थरोसे उसके पाँव घायल होकर खून बह रहा था। भूखसे पेटमें अग्निकी ज्वाला जल रही थी। प्याससे प्राण सूख रहे थे। सामने एक छोटा-सा झरना देखकर वह पानी पीनेके लिए दौडा। पर झरनेके पास फिसलकर गिर गया। उसके शरीरमें

सिद्धार्थ झरनेके पास फिसलकर गिर पड़ा।

उठनेकी शक्ति न थी, उसे लगा कि सामने पानी रहते हुए भी पानीके बिना मर जाऊँगा क्या?

सिद्धार्थका निश्चय डिगानेके लिए मार नामक दुष्ट शक्तिने यह अवसर ढूँढ निकाला और अपनी मायाजालकी मार शुरू की। बुद्ध-ग्रन्थोमें कहा गया है कि सबसे पहले मारने अपनी मधुर आवाजमे सिद्धार्थके मनमें पिछले सुख-विलासकी स्मृति जागृत की। वह सिद्धार्थके कानमें फुस फुसाया : "रे पागल राजकुमार, वापस लौट चल। सन्यासी होना तुझे शोभा नहीं देता। तू वीर है, तेरा बड़ा राज्य है। तू चक्रवर्ती सम्राट होगा। संसारमे न्याय और शांतिका साम्राज्य फैलाना छोडकर तू इस वनमें मृत्युके मुखमें क्यो जा रहा है?"

सिद्धार्थने मारका दाव पहचान लिया और उसकी बातोकी ओर ध्यान नहीं दिया। मार चलता बना। सिद्धार्थने अपने निश्चयका बल पकड़ कर फिरसे अपना मार्ग लिया। अब वह राजगाहमें आया था। इस प्रदेशमें अलारकालम नामक प्रसिद्ध ऋषि रहते थे। उनके आश्रममें

अनेक शिष्य थे। सिद्धार्थ इस आश्रममें पहुँचे। आश्रमके नियम बहुत कठोर थे। सब लोग कंदमूल फल खाते और जमीन पर सोते थे।

मुनिने सिद्धार्थको वेद, उपनिषद और अन्य दर्शन-शास्त्रके अध्ययन कराये। श्रद्धा, ध्यान, सदाचार, चिन्तनके महत्त्व उन्होंने सिद्धार्थके मनमें बैठाये। पर सिद्धार्थके मनकी उथल-पुथल शान्त न हुई। उसके मनके प्रश्नोंके उत्तर न मिले। कस्तूरीवाले मृगके समान उसकी अवस्था हुई थी। सुगन्धि अपने पास रहते हुए भी वह जहाँ-तहाँ भटक रहा था। इसके बाद वह उद्दक रामपुत्र नामक दूसरे मुनिके पास गया। उसके आश्रममें कुछ दिन विताये। पर मनको शाति न मिली।

इस आश्रममें लोग सिद्धार्थको गौतम नामसे पहचानते थे। एक दिन गौतम अन्य शिष्योंके साथ गाँवमें भिक्षा माँगनेके लिये गया। उसके राजसी रूपको देखकर युवतीने लालायित नजरोंसे उसे भिक्षा

उसके राजसी रूपको देखकर युवतीने लालायित नजरोंसे उसे भिक्षा दी।

दी । एकने उसे सुनाकर अपनी सहेलीसे कहा : “ कितनी भाग्यवान होगी इसकी पत्नी ! कितने भाग्यवान होंगे इसके माता-पिता !! हरेकको पसंद आने वाला यह तरुण भला कौन होगा ? ” गौतम भिक्षा लिए बिना वापस लौट आया ।

गौतम दुबारा एक दिन इसी तरह नगरमें गया । राजाकी ओरसे उसे मिलनेका संदेश आया । “ मै एक मुनि–शिष्य हूँ । तुम्हारे राजासे मिलकर मै क्या करूँगा ? ” गौतमने राजदूतसे कहा । दूतने राजासे जब यह बात बताई, तो वह खुद गौतमसे मिलने आया । गौतमका सुन्दर रूप, युवावस्था और ज्ञानको देखकर राजा बिंबसार आश्चर्यचकित हुआ । उसके मनमें वात्सल्य जागृत हुआ । “ ऐ कुमार, तूने यह तपस्वी-जीवन क्यों स्वीकार किया ? मेरा कोई पुत्र नहीं । तू मुझे पिता मानकर मेरे साथ चल । मेरे राज्य का उत्तराधिकारी होगा । ”

गौतम होंठोमें हँसा और नम्रतासे बोला, “ महाराज, मुझपर आपने जो कृपा की उसके लिए धन्यवाद । पर आपको मालूम न होगा कि मै खुद राजकुमार हूँ । मेरे पिता कपिलवस्तुके सम्राट है । अपना राज्य छोड़कर निकलनेवाला मै आपका उत्तराधिकारी कैसे बन सकूँगा ? ”

बिंबसार : कुमार, तूने यह वैराग्य क्यो स्वीकार किया ? तुझे कौन-सा दुख है ?

गौतम : महाराज, वही तो मै ढूँढ रहा हूँ । मुझे राज्य और सुख-विलास नहीं चाहिए । मै शाश्वत सुखकी खोज कर रहा हूँ ।

बिंबसार : राजपुत्र, तुझे यश मिले । शाश्वत सुखका मार्ग मिलने पर तू एक बार अवश्य इधर आ । मेरे राज्यका दरवाजा तेरे लिए हमेशा खुला है । मेरी यही इच्छा है कि मगधको तेरे स्वागतका लाभ मिले ।

गौतमने राजाको आश्वासन दिया और कुछ दिनो बाद उसने उद्दकका आश्रम भी छोड़ दिया ।
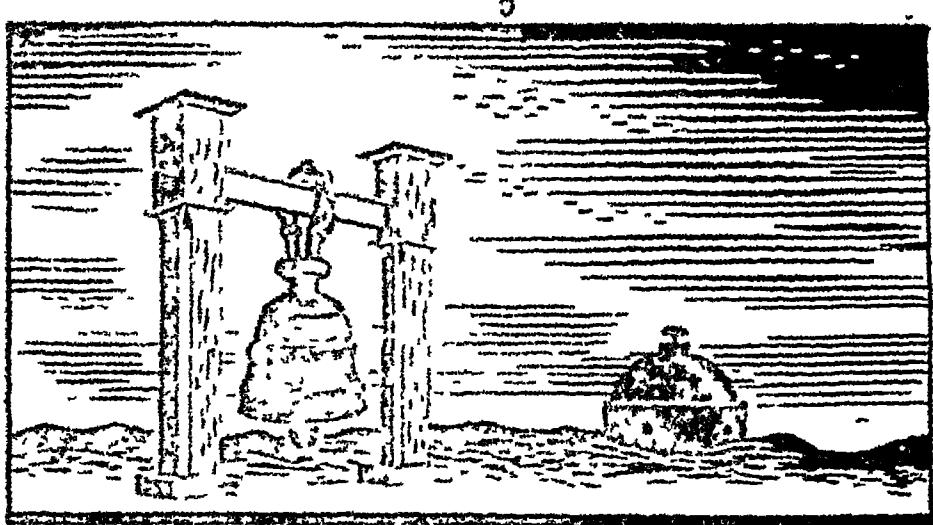
प्रखर शारीरिक तपके बाद भी प्रकाश नहीं!
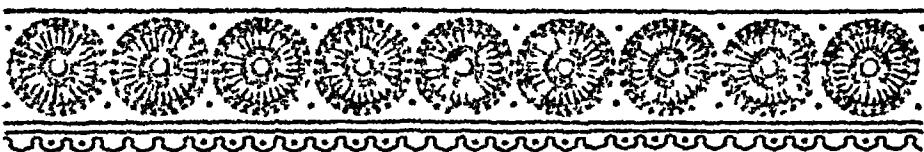
बहुत दिनो तक मगधमे भटकनेके बाद गौतम अपने पाँच साथियोके साथ उरुवेला नामक स्थानमे आया। यह स्थान बहुत सुहावना था। तपोवनके रूपमे यह प्रसिद्ध था। वहाँपर एक प्रकारकी स्थिरता और शाति थी। इंद्रिय और वासनाये प्रक्षुब्ध हो, ऐसा वहाँ कुछ भी न था। जगलके कंदमूल खाकर और झरनोंके जल पीकर ऋषि-मुनि वहाँ तपस्या कर रहे थे।

गौतमने उस घने वनमे अपनी पसंदगीका एक स्थान चुना । "मैं अब कठोर तपस्या करूँगा । अपने शरीरकी सारी आवश्यकता, संपूर्ण वेदना और वासना नष्ट कर दूँगा । शायद उन्हींके कारण मेरी अतरात्माका तेज बढ़कर मुझे शाश्वत सुख मिल सके ।" उसने विचार किया ।

गौतमने अनशन शुरू किया, मौनव्रत रखा । बैठनेके लिए कॉटोंके आसन लिए । शरीरको जरा भी सुख न मिले, इसलिए चारो ओर कॉटोंके ढेर बनाये । इस प्रकार छः वर्षों तक उसने अत्यंत कठोर तपस्या की । एक दिन तो उसके साथियोको लगा कि ग्लानिसे गौतमके प्राण तो नहीं निकल गये ! स्वयं गौतमने अपनी इस कठोर तपस्याके बारेमे बादमे शिष्योको बतलाया कि "इद्रियोका दमन करनेके लिए और मनके तमाम विकारोको जला देनेके लिए मैने कठोर व्रत आरंभ किया । मेरा पेट पीठसे लग गया था । शरीरमे जरा भी शक्ति न रह गई थी । हड्डियोसे मिलकर त्वचा पर झुर्रियाँ पड़ गई थीं । बालोपर जरा-सा हाथ लगाते ही झड़ जाते थे । बीचमे ग्लानि होती और लगता कि प्राण चले जायँगे । पर भिक्षुओ, इतनी कठोर तपस्या करनेपर भी मुझे प्रकाशकी एक किरण तक न दिखाई पड़ी । अन्तमे मै इस निर्णय पर पहुँचा कि उपवास और तप सच्चे ज्ञान प्राप्त करनेके मार्ग नहीं है ।"

इस प्रकार क्षीणकाय हो जाने पर गौतमको अपनी युवावस्थाकी एक घटना याद आई । अपने कठोर तप-स्थानसे वह दूसरी जगह जानेका प्रयत्न करने लगा । पर पॉवोमे जरा भी शक्ति न रहनेके कारण पॉच-दस कदम जाते ही वह गिर पड़ा । फिसलकर उसने वृक्षके तनेका आश्रय लिया । वहॉ वह करीब बेहोशीकी अवस्थामे कुछ देर तक पड़ा रहा ।

गौतमका जीवन इस प्रकारके उथल-पुथलमें बीत रहा था और उसके प्राण जीवनकी सीमापर झोंके खा रहे थे। ऐसे ही समय मार नगरह पर्दापुत्रोंने उसपर पुनः हमला किया। उसे डराने और माया-जालमें फँसानेका प्रयत्न किया। पर गौतमकी बुद्धिपर पर्दा न पड़ा। उसका निश्चय दृढ़ रहा। वह अपने आप विचार करने लगा, मेरा शोध व्यर्थ न होगा, इस बातका मुझे अब अधिकाधिक विश्वास हो रहा है। संसारके ये सारे दृश्य बदलनेके बाद और विनाशके बाद कुछ शाश्वत तत्त्व अवश्य हैं। मनुष्यकी वृत्ति और आत्मा उस शाश्वतका ही अंश है। मुझे उसकी खोज करनी चाहिये। पर इस सम्बन्धमें पिछले छः वर्षों तक मैंने जो मार्ग अपनाया, वह उसकी खोजका सच्चा मार्ग न था। अनेक लोग आगे चलकर स्वर्गीय सुख मिले, इसी उद्देश्यसे इस जन्ममें कठोर तपस्या करते हैं। पर मेरे विचारसे पृथ्वीके समान ही स्वर्ग या नरक भी शाश्वत नहीं है। मुझे स्वर्गके सुखका भी मोह नहीं है। उससे भी आगे मुझे जाना है।

इस वनके आस-पास सुजाता नामक एक ब्राह्मण-कन्या रहती थी। उसने यह मनौती की थी कि अपनी इच्छानुसार पति मिलनेपर वह हर साल एक हजार गायोंके दूधपर पोषित सौ गायोंके दूधका नैवेद्य वनदेवताको अर्पण करेगी। सुजाताकी इच्छा पूरी हुई। अनुकूल पति मिला। पुत्र-पौत्रोंसे घर भर गया। हर साल नियम पूर्वक वह इस वनमे आकर एक वृक्षके नीचे अपना नैवेद्य रख जाती। इस वर्ष भी वह आई। अपने हमेशावाले वृक्षके तनेके पास एक मनुष्य आकृति देखकर वह घबराई। उसे शंका हुई कि वृक्षका प्राण तो कहीं मनुष्य रूप धारण करके नहीं आया। सुजाताने अपना मन दृढ किया और अपना नैवेद्य मनुष्य आकृतिके सामने रखकर नमस्कार किया।

गौतम भूखसे व्याकुल था। मनमें भी ये विचार उठ रहे थे कि बिना कारण शरीरको दड देनेसे कोई लाभ नहीं। उसने सुजाताका नैवेद्य खा लिया और सामने वहते हुए झरनेमे वह पात्र फेककर बोला : " यदि मैं बुद्ध बननेवाला होऊँ तो पात्र प्रवाहकी उल्टी दिशामे तैरता जावे।" कहा जाता है कि सचमुच वह पात्र उल्टी दिशामे गया!

छः वर्षोंकी कठोर तपस्याके बाद गौतमने फिरसे अन्न खाया, इसलिए उसके पॉचो साथियोका विश्वास उसपरसे उठ गया। वे गौतमको धिक्कारते हुए चले गये। गौतमने हृदयसे सुजाताका आभार माना। थोडी शक्ति आते ही वह वहॉसे आगे बढा!

सुजाताने अपना मन दृढ़ किया और नैवेद्य मनुष्य आकृतिके सामने रखकर नमस्कार किया
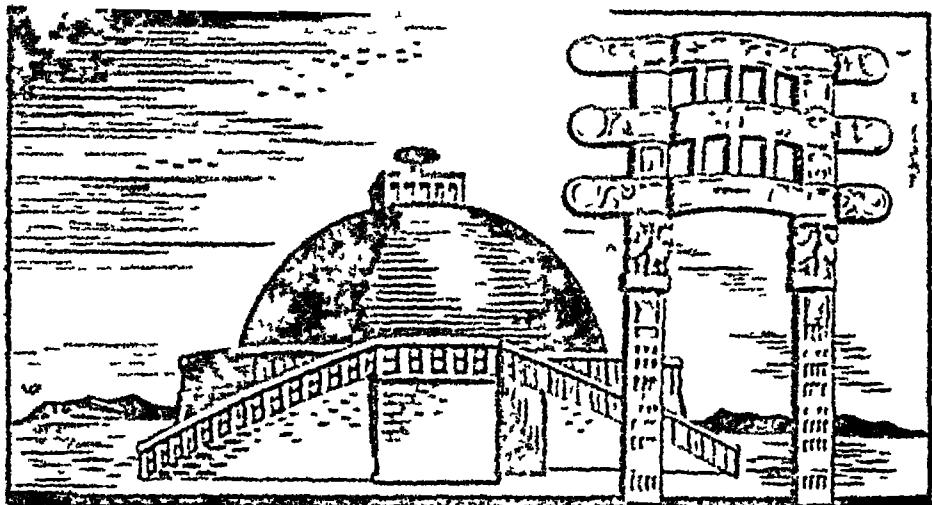
बोधप्राप्ति
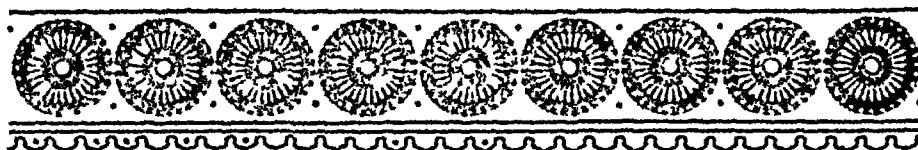
घूमते घूमते गौतम निरंजना नदीके किनारे आया (अब इस नदीको फालगु कहते है) वहाँ एक वृक्षके नीचे उसने आसन जमाया ! आस-पासका वातावरण प्रसन्न था । गौतम ध्यानस्थ हुआ । उसकी यह समाधि भग करनेके लिए मारने उसपर अग्नि, प्रस्तर, अस्त्र-शस्त्र की वर्षा की । गौमत अपनी जगहसे हिला तक नहीं । आखिर मारने अपनी तीन सुन्दर कन्याओंको गौतमपर संमोहिनी डालनेके लिए भेजा । उन्होने अपने उत्तान

सौदर्यकी संपूर्ण बाजी लगा दी। पर गौतमने उनकी ओर आँख उठाकर भी न देखा। तब उनमेसे एकने बहुत अधिक पीछे पडनेकी कोशिश की। गौतमने केवल एक क्षण उसकी ओर क्रोध से देखा। उसका सारा सौंदर्य नष्ट होकर वह कुरूप वृद्धा बन गई। आखिर गौतमकी शरणमे आनेपर उसे अपना रूप वापस मिला। इस प्रकार मार पूर्ण रूपसे पराजित हुआ।

बौद्धग्रन्थोमे मार और उसके तमाम उत्पातोका बारबार उल्लेख मिलता है। मार वास्तवमे अपने मनके षड्रिपुओका प्रतीक है। उसके आक्रमणका तात्पर्य गौतमके मनकी अशाति, अस्थिरता और संघर्ष है। बादमे अपने शरीर और मन पर जब गौतमको संपूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया, तो मार पूर्ण रूपसे पराजित हुआ। समाधिके लिए मन की स्थिरता अत्यंत आवश्यक मानी जाती है, इसके बाद किसी प्रकार की मनोव्यथा आये बिना अखंड ध्यान-धारा प्रवाहित होती है। गौतम इस अवस्था तक पहुँच चुके थे।

गौतमके मनके संघर्ष समाप्त होतेही पुरानी मान्यताएँ नष्ट होकर नव निर्माण हुआ। ध्यानकी चार अवस्थाओसे गुजरने पर उसे विशुद्ध आत्मशुद्धि प्राप्त हुई। सबसे पहले उसकी आँखोंके सामने अपने पिछले जन्मोका चक्र घूमने लगा। उसे स्पष्ट दिखाई पड़ा कि वह किन जन्मोसे होकर गुजरा और अब बुद्ध होनेकी अवस्था तक कैसे पहुँचा। उसके मनको शांति मिली। प्रत्येक मनुष्य सिर्फ अपने वर्तमान जन्म और उस समयका जीवन देखता रहता है; पर गौतमके सामने अब उसका सम्यक् जीवनपट फैला था। मनुष्य इस जन्ममे जो कर्म-दुष्कर्म करता है, उसके कारण उसका अगला जन्म निश्चित होता है। तब प्रत्येक मनुष्यका इस सृष्टिसे अपना भविष्य निश्चित होता है। इसी प्रकार

मनुष्यके कर्म और उसके विचारोंकी समाप्ति होती है और विचारोंका उद्गम मनसे होता रहता है। गौतमको यह रहस्य मालूम हो गया कि मनकी स्थिरता ही सबसे महत्त्वपूर्ण बात है।

एक पहर रात समाप्त होनेपर उसकी दिव्य दृष्टिके सामने त्रिलोकका रहस्य प्रकट हुआ। स्वर्ग, पृथ्वी और पाताल तीनों लोक उसने अपनी आँखोंसे देखा। स्वर्गके सुखोंसे उसे मोह न हुआ अथवा दूसरोंको पातालके नरकका दंडा देना उसे पसंद न आया। पृथ्वीपर सब प्राणीयोंकी परीक्षा होती है और अपने पाप-पुण्यके अनुसार उन्हें

देवताओंने बुद्ध परंपराके अनुसार चौथे बुद्धपर पुष्पवृष्टि की।

स्वर्ग और नरक दिया जाता है, इसका अनुभव उसने किया। स्वर्ग और पाताल भी चिरंतन अथवा शाश्वत नहीं। वहाँ भी नियमित परिवर्तन होते ही रहते है। उसने अनुमान किया कि तब स्वर्गके बाद भी कुछ तो भी शाश्वत होना ही चाहिए। मन ही मन उसने उस अवस्थाका नाम निर्वाण दिया।

अब रातका तीसरा पहर शुरू था। संपूर्ण चराचर सृष्टिपर स्तब्धता छाई थी। ऐसे प्रशात समयमे उसके अंतःकरणमे ज्ञानज्योति प्रदिप्त हुई। गौतमको बोध हुआ। वे बुद्ध हुए। उन्हें शाश्वत सत्यका दर्शन हुआ। उनकी तमाम आशंकायें मिट गई। सारी समस्यायें खत्म हुई। पूरबकी ओर ऊषाकी प्रभा फूट रही थी। इसके बाद सात दिनों तक बुद्ध ध्यानस्थ अवस्थामे उसी वृक्षके नीचे बैठे रहे। उनकी ज्ञान-प्राप्तिसे पृथ्वीको आनंद हुआ। देवतओंने बुद्धपरंपराके अनुसार चौथे बुद्धपर पुष्पवृष्टि की। बोधिप्राप्तिके समय बुद्धकी अवस्था लगभग पैतीस वर्षकी थी। वैशाखी पौर्णिमा उनके ज्ञान-प्राप्ति का दिन माना जाता है। जिस वृक्षके नीचे बुद्धको ज्ञान प्राप्त हुआ, वह वृक्ष बुद्ध गया (बिहार) मे अब भी खड़ा है। ऐसा माना जाता है कि बोधिवृक्षमे अपने अंकुरसे पुनः वृक्षका रूप धारण करनेका गुण है।
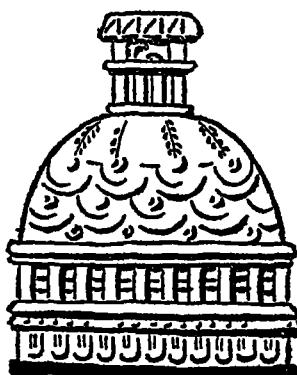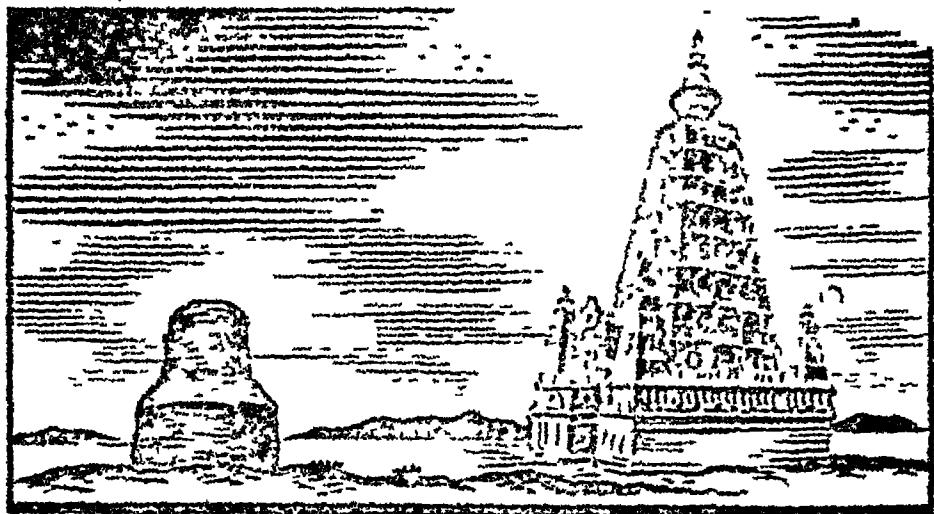
तृष्णासे मुक्ति
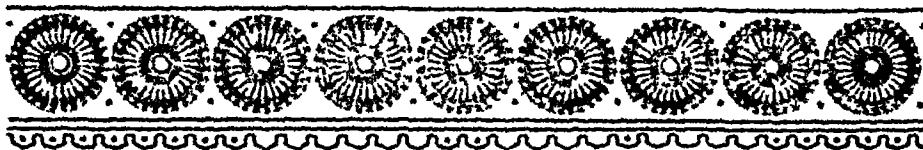
अपने ज्ञानप्राप्तिके संबंधमें बुद्धने स्वय कहा है · " मेरे मानस-क्षितिजपर जब ज्ञानकी प्रभा छिटकी, तब मुझे लगा कि मेरा मन तृष्णासे मुक्त हो रहा है, पुनर्जन्मके चक्रसे छूट रहा है, अज्ञानके अधकारसे आगे जा रहा है, और मेरा ध्येय पूर्ण हुआ। तृष्णा ही सब विकारो, सब रोगो और सब दुखोकी जड है। मुझे प्रतीत हुआ कि इस तृष्णाको कैसे नष्ट किया जाय, विकारके जालको कैसे तोडा जाय। इसे जानने वाला

* * * * * * * * * * *

मेरे सिवा संसारमें कोई नहीं। मृत्युसे अमरत्वकी ओर, अस्थिर और अशाश्वतसे स्थिर और शाश्वतकी ओर जानेका मार्ग मुझे मिल चुका था।"

बौद्धग्रन्थोंमें कहा गया है कि जब बुद्ध विचार कर रहे थे कि स्वतःको मिला हुआ ज्ञान दूसरो को दिया जाय या नही? उस समय स्वयं ब्रह्माने उनसे संसारको 'धम्म' (धर्म) सिखाने की विनती की। ऐसा उल्लेख भी बुद्ध ग्रन्थोंमें है कि बुद्धका निश्चय जब तक न हुआ था, तब तक पृथ्वी काँप रही थी, देवता चिन्ताग्रस्त थे। अन्तमें बुद्धके अन्तःकरणमें करुणा निर्माण हुई। संसारपर अनुग्रह करनेका उन्होने निर्णय किया, उन्होंने संसारमें रहकर ही नया धर्म सिखाना तै किया।

"संसारके अंधकारमें मै ज्ञानका ढोल बजा रहा हूँ। जिन्हे कान होगा वे श्रद्धा दिखावें।" यह घोषणा करके बुद्धने परिभ्रमण शुरू किया। धर्मचक्रप्रवर्तन आरम्भ हुआ। ईसा मसीहने लोगोंसे कहा, "मैं ईश्वरका पुत्र हूँ, तुम सब मेरे पीछे आओ। साक्रेटिस, शंकराचार्य आदि सब प्रवर्तको और तत्त्वज्ञानियोमें यही आत्मविश्वास पाया जाता है। उन सबके पहले बुद्ध ही इतने आत्मविश्वासपूर्वक संसारके सामने आये।

सबसे पहले उनके सामने यह प्रश्न उपस्थित हुआ कि किसको उपदेश दिया जाय? उनके पाँचों साथी पहलेही रुष्ट होकर चले गये थे। पहलेके गुरु अलारकालम् और उद्दक मर चुके थे। अन्तमें काशीके समीप सारनाथके तपोवनमें बुद्धको अपने पाँचो पुराने साथी मिले। उन्होने पहले बुद्धसे न बोलनेका निश्चय किया था। परन्तु बुद्धको पास आते ही वे चुम्बकके समान उनकी ओर आकर्षित हुए। मनही मन उन्हे साक्षात्कार हुआ कि बुद्धको ज्ञान प्राप्त हुआ है। वे पाँचो बुद्धके

चेहरेके समाधानकारक तेजसेही आश्चर्यमें डूब गये। नम्रता पूर्वक उन्होंने उनका पाँव पकड़ा।

सारनाथकी तपोभूमि उस समय विशेष प्रसिद्ध थी। वहाँपर प्राणी-हत्या मना थी। भरतभूमिके अनेक ऋषि-मुनियोंका आश्रम वहाँ था। उस पवित्र स्थानपर बुद्धने अपना पहला प्रवचन दिया। उस दिन आषाढी पौर्णिमा थी।

सौभाग्यसे बुद्धके उस पहले ऐतिहासिक प्रवचनका आशय उपलब्ध है। उसमें अन्यत सरल सूत्र थे। जिन्हें धर्ममय जीवन बिताना है, उन्हें मर्यादाबद्ध जीवन बिताना चाहिए। अति सर्वत्र वर्जयेत्! अत्यत देहदण्ड और अत्यन्त भोग दोन ही समान त्याज्य हैं। इसलिए बुद्धने मध्यमा प्रतिपदा अथवा मध्यमार्गका समर्थन किया। मानवीय तृष्णाही सब दुःखोंकी बुनियाद है। इसालिए उसे नष्ट करनेके उपाय — अष्टांगमार्ग उन्होंने बतलाये। यह सम्यक्दृष्टि, सम्यक्वाणी, सम्यक् प्रयत्न आदि आठ नीतितत्त्व बुद्धके उपदेशोंके सच्चे सार हैं। पहले प्रवचनके बाद सारनाथमें बुद्धको साठ शिष्य मिले। उनका प्रिय शिष्य आनंद उनमें ही था। आनन्द यानी बुद्धदेवकी छाया। वह हमेशा उनके साथ रहता।

धीरे २ बुद्धको अनेक शिष्य मिलते गये। यह सत्य है कि वैदिक धर्मके यज्ञ, याग, वर्णभेद, रूढि, परम्परा आदिके विरुद्ध उन्होंने

उस पवित्र स्थानपर बुद्धने अपना पहला प्रवचन दिया।

प्रत्यक्ष क्रान्ति की। परन्तु बौद्धधर्म ब्राह्मणद्वेषी न था। उनके शिष्योंमें सारीपुत्त और मोगल्लन् जैसे सर्वोत्तम शिष्य ब्राह्मण थे। आनन्द, देवदत्त इत्यादि क्षत्रिय थे। तापसा और भल्लिक जैसे व्यापारी थे। उपालिस जैसे शूद्र भी थे। ऐसे प्रमाण मिलते है कि एक समय बुद्धके पास ११३ ब्राह्मण, ६० क्षत्रिय, ५३ मंत्री, सरदारादि प्रतिष्ठित व्यक्ति, ७ जमींदार, ९ शूद्र, १० गुलाम या मजदूर, ३ बच्चे, ३ लावारिस बच्चे और १ नट थे। इससे यह सिद्ध होता है कि बौद्ध धर्मने जाति-पाँति, वर्ण-व्यवसाय आदि भेदभावके विरुद्ध झंडा उठाया था। अनेक इतिहासकारोके विचारसे तो यह सचमुच जनक्रांति थी। ज्ञानके बारेमें पक्षपात न करके सबके लिए उसका भंडार खुला रखनेका यह प्रयत्न था। चारो ओर फैली हुई हिंसा और अनाचारके कारण बँधे हुए इतिहासको नया मोड़ मिला। उस समय यज्ञमें गायकी भी बलि दी जाती थी, ऐसा उल्लेख मिलता है।
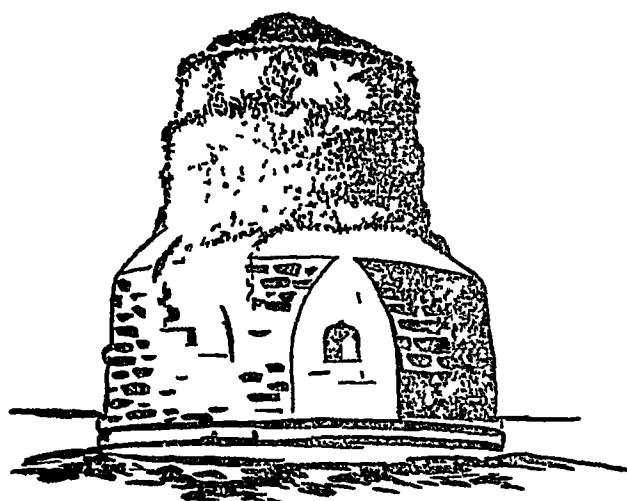
बहुजनहिताय बहुजनसुखाय
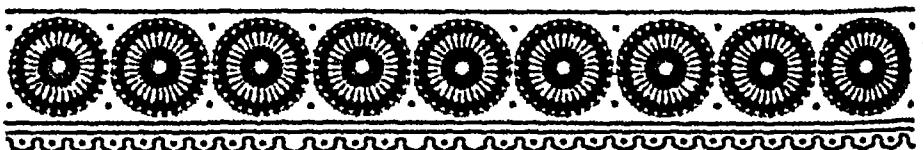
वर्षाऋतु शुरू हुई। बुद्धने वापस उरुवेला जानेका निश्चय किया। उन्होने अपने शिष्योको बुलाकर कहा, "भिक्षुओ! अब तुम लोग बहुजनहिताय बहुजनसुखाय यहाँसे प्रस्थान करो। सब जगह घूमो; संसारके लिए अत्यन्त सहानुभूति और करुणा पूर्वक मनुष्यके कल्याणका प्रयत्न करो। सब लोग एकही दिशामें मत जाओ। हर एक अलग अलग भागोमे जाओ। जिस उपदेशका आरम्भ, मध्य और अन्त समानही दिव्य

है, वह उपदेश संसारको दो। पवित्र, शुद्ध और निर्दोष जीवनका उद्घोष करो। चलो, भ्रमण आरम्भ करो।

पहले पहल बुद्ध स्वयं "येही भिकु" (ऐ भिक्षु, आ!) कहकर नवागतको संघमें लेते थे। अब उनके शिष्य सर्वत्र घूमनेवाले थे। अब उन्होंने नए शिष्योंको संघमें लेनेका मार्ग बताया। किसीभी नये व्यक्तिको "बुद्धं शरणं गच्छामि, संघम् शरणं गच्छामि, धर्मं शरणं गच्छामि।" यह सूत्र तीन बार उच्चारण करनेपर संघमें प्रवेश मिलता था।

बुद्ध उरुवेलाके लिए रवाना हुए। मार्गमें उन्हें एक जगह कुछ युवक युवतियाँ क्रीड़ा करते हुए मिले। एकने अपने साथ अपनी पत्नी न होनेके कारण दूसरी स्त्री ले आया था। उस स्त्रीने सबके कपड़े और बहुत-सी चीजें ले लीं और चलती बनी। युवक उसे यहाँ वहाँ ढूँढ़ने लगा। बुद्धको देखते ही उसने पूछा, "महाराज, आपने किसी स्त्रीको इधरसे भागकर जाते देखा है क्या?" बुद्धने मुस्कराकर उत्तर दिया— "क्यों व्यर्थ उस स्त्रीकी खोज कर रहा है? वह समय अपनी खोज करनेमें खर्च कर!" वह युवक निराश हुआ। बात उसकी समझमें आई, उसने बुद्धका पाँव पकड़ा।

बुद्धके बोलनेकी शैली बहुतेक प्रश्नोत्तर रूपमें होती थी। छोटे छोटे वाक्य घरेलू उपमाओं और दृष्टान्तो से भरे हुए, कुछ विनोद और व्यंग भी उसमें होते। ब्रह्मज्ञानके गुप्त मार्गके संबंधमें विना कारण रहस्यमय वातावरण निर्माण करनेवालोंकी उन्होंने इस प्रकार मजाक उड़ाई। उन्होंने कहा, "शिष्यो, संसारमें केवल तीन व्यक्तियोंके पास गौप्य रहता है। स्त्रियों, भट-भिक्षुकोंके ज्ञान और झूठे धर्ममत! परन्तु जो बुद्ध हुआ, उसके विचार सूर्यके प्रकाश और हवाके समान स्वाधीन होते हैं।"

मृत्युसे पहले आनन्दसे उन्होंने कहा, "आनन्द, मैंने हमेशा सत्यका उपदेश दिया। सत्यमें गुप्त और प्रकट ऐसे भेद नहीं। तथागतके पास (बुद्ध अपने आपको तथागत याने पहलेके बुद्धके पीछे आनेवाला कहते थे।) कुछ गुप्त नहीं।"

अनेक तत्त्वज्ञान, अनेक दर्शन और विचारोंको बुद्धिवादी दृष्टिकोणसे विचार करो, ऐसा उपदेश करते हुए बुद्धने कहा, "तुम्हारे सामने जो जो विचार रखे जायेंगे, जो जो मार्ग बनाये जायेंगे उन सबको तर्ककी कसौटीपर कसो। किसी व्यक्तिका आदर करते हो सिर्फ इसीलिए उसके विचारोंको स्वीकार मत करो। सुनी हुई बातोंपर विश्वास न करो। परंपरासे चला आ रहा है, इसलिए उसे मत मानो। कोई बात धर्मग्रंथोंमें कही गयी है। सिर्फ इसलिए उसे स्वीकार मत करो। मेरे नामकी बाधा अपने स्वतंत्र विचार-शक्तिमें मत आने दो।"

बुद्धके यह वचन उनके निर्विकार और आलोचनात्मक वृत्तिके प्रमाण हैं। एक बार उनका प्रिय शिष्य सारीपुत्त बुद्धकी प्रशंसा करते हुए बोला, "भगवान, ऐसा लगता है कि आपसे बड़ा तत्त्वज्ञानी पहले न कभी हुआ, न भविष्यमें होगा।"

यह सुनकर बुद्ध धीरेसे मुस्कराये। सारीपुत्तसे उन्होंने पूछा, "क्यों सारीपुत्त, अबतक पिछले हुए तत्त्वज्ञानी बुद्धोंके बारेमें तुम्हें मालूम नहीं?"

सारीपुत्त—नहीं महाराज!

बुद्ध—भविष्यकालका तो तुम्हें मालूम होगा ही।

सारीपुत्त—नहीं महाराज।

बुद्ध—कमसे कम मेरे अन्तर्मनमें तूने मुझे झाँक कर तो देखा होगा। तू अच्छी तरह समझता नहीं?

सारीपुत्त—भगवन्, ऐसा भी नहीं कहा जा सकता।

बुद्ध—फिर तूने यह धृष्टतापूर्ण विधान क्यों किया? भूत, भविष्य, वर्तमानके बारेमे खुदको इतनी थोड़ी जानकारी होते हुए, ऐसे विधान क्यों करने चाहिए?"

सारीपुत्त निरुत्तर हुआ। बुद्ध अनुयायियोंसे हमेशा इस प्रकार बोलते कि उन्हे स्वयं मौलिक रूपसे विचार करना पड़ता। अपने अनुयायियोंके विचार-स्वतत्रताकी वे रक्षा करते। उन्हे लगता कि किसीको गुरु मानकर शिष्योंने यदि सत्य-संशोधनका कार्य छोड़ दिया, तो वह अपना और दूसरोंका उद्धार नहीं कर सकते। उन्होंने निर्वाणसूत्रमे कहा है, "आत्तदीप, आत्तशरण, धम्मदीप, धम्मशरण" (जिन्हे आत्माही आधार मालूम होती है, अथवा जिन्हे अन्य आधार न लगकर आत्माही आधार मालूम होती है ऐसा बनो। सत्यधर्मही जिनका दीपक और सत्यधर्म ही जिनका आधार है ऐसा बनो) बुद्धका यही मुख्य संदेश है।
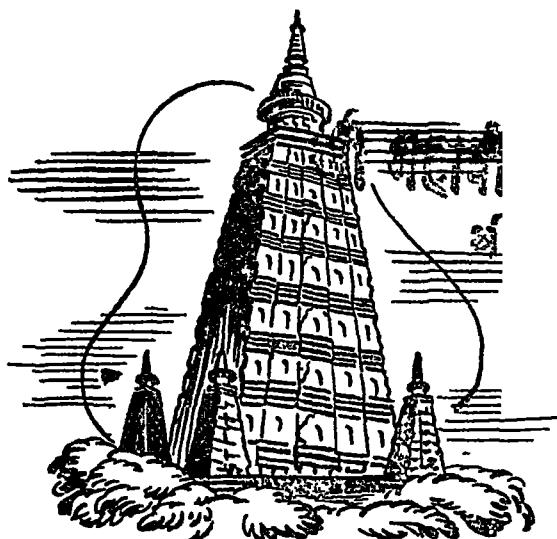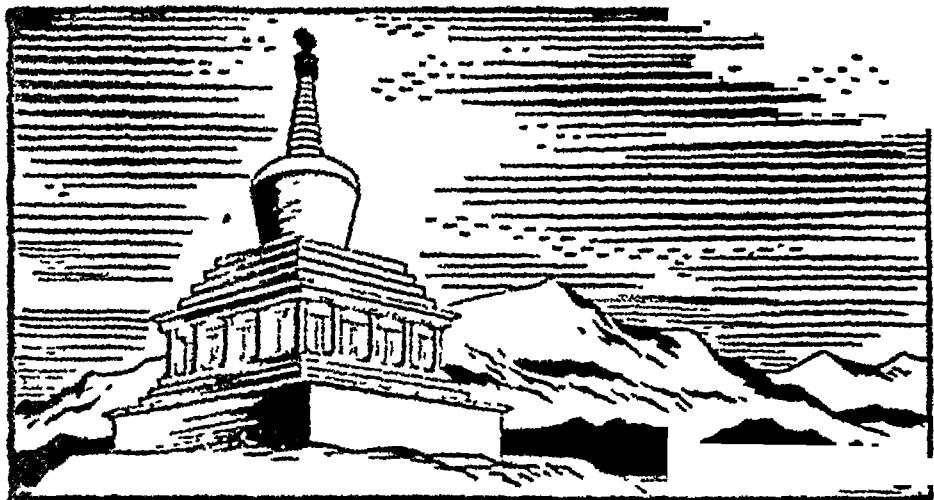
दीन दुर्बलोंका सम्मान
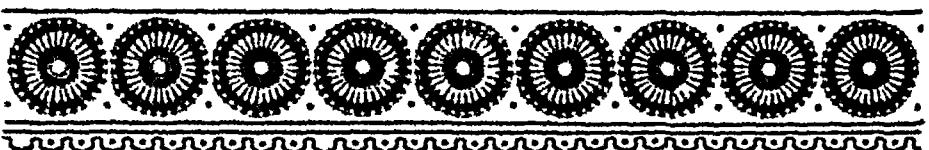
देखा जाता है कि दीन, दुखी, दुर्बल, दरिद्र और शूद्रोका सभी संतोने समर्थन किया है। बुद्ध, शंकराचार्य, एकनाथ, चैतन्य, कबीर, तुकाराम, नानक, रामकृष्ण परमहंस अथवा महात्मा गांधीके चरित्रोसे ऐसा प्रकट होता है कि वे लोग समाजके दीन-दुखियोसे समरस हुए थे। बीमार आदमीको देखतेही बुद्ध अपने शिष्योंसे कहते कि तुम जिस तरह मेरी सेवा करोगे, वैसीही इस बीमारकी करो। वे स्वयं दलितोंके

संपर्कमें रहते। एक बार रास्तेमें उन्हें एक भंगी दिखाई पड़ा, उसने हरेकको नमस्कार करनेकी अपनी आदतके अनुसार बुद्धको भी नमस्कार किया। बुद्धने आगे-पीछे बिना कुछ सोचे स्वभावतः उसे 'एही भिकु' (भिक्षु आ!) कहकर पुकारा और उसे संघमें शामिल किया। एक स्थान पर बुद्ध कहते है कि "मै ब्राह्मण नही, क्षत्रिय नहीं, वैश्य नही। मै सामान्य जनतामेंसे एक हूँ। मेरे पास अपना कुछ नहीं। जन्मसे कोई ब्राह्मण नही और जन्मसे कोई शूद्र नहीं। अपने कर्तव्योंसे सभी ब्राह्मण या शूद्र बनते है।

किसानो, गड़ेरियों या लोहारोसे बुद्धकी जो बाते हुई हैं, उन्हे पढकर लगता है कि वे सामान्य जनतामें घुलमिल गये थे। उन जैसे ज्ञानी और महान् पुरुष अपने आपको किसान, गड़ेरिया या लोहारके स्थानपर ही समझते रहे। ज्ञानप्राप्ति के बाद मारने बुद्ध से कहा कि अब तुम निर्वाण प्राप्त करो। अपने ज्ञानका प्रसार करते हुए भ्रमण करनेकी तुम्हे जरूरत नहीं। बुद्ध उससे स्पष्ट अस्वीकार करते हुए कहते है कि मुझे निर्वाण नहीं चाहिए। मै देश-देशांतरोमें भ्रमण करके सामान्य जनताको ज्ञान दूँगा। उनका उपदेश था कि जिस प्रकार माँ अपने इकलौते बेटेकी सँभाल करती है। उसी तरह हमें इस विश्वके तमाम प्राणीमात्रपर प्रेम करना चाहिए। उसीमें वे ब्रह्मविहार होना मानते। ब्रह्म, अध्यात्म, ज्ञानके बारेमे जड़ जंगमोपर उनका विश्वास न था, संसारपर अत्यंत प्रेम और अंतःकरणकी अत्यंत करुणाके कारण बुद्धकी वाणी भी बहुत मधुर हो गई थी। वे बराबर इस बातका ध्यान रखते कि अपनी बातोसे किसीको जरा भी दुःख न हो। सारीपुत्तने लिखा है कि 'बुद्ध जैसा मधुरभाषी व्यक्ति मैने कभी देखा नहीं और न ही मेरे सुननेमे आया।'

" विवादोसे मनुष्य दूर जाता है। कठोर शब्दोका वाणकी अपेक्षा भी भयानक जख्म होता है। यथा संभव विवादोको टालो और प्रेमसे लोगोको जीतो।" बुद्ध अपने शिष्योसे हमेशा कहते रहते।

अब यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि इस प्रकार सारे संसार पर निःसीम प्रेम करनेका उपदेश देनेवाले बुद्धने अपने परिवार-वालोको दुःख क्यो दिया? गृहत्याग करके उन्होंने अपने माता, पिता, पत्नी, पुत्र और मित्रोको कष्ट क्यो दिया? इसका उत्तर स्वय बुद्धने दिया है। उन्होंने कहा: " भिक्षुओ, मैं परिव्राजक या श्रमण क्यो बना? घर रहना मेरे लिए संभव न हो सका, इसलिए बना। घर यानी धूलिका मूल स्थान स्वार्थ, आशा-आकाक्षाओकी धूलि त्यागनेके लिए मैंने आकाशमे उडनेका निश्चय किया।" दूसरे एक प्रवचनमे वे कहते हैं: " किसी छोटेसे गड्ढेमे बहुत अधिक मछलियाँ हो जानेपर जैसे एक दूसरेपर वे हमला करती हैं, उसी प्रकार मनुष्यको मनुष्यपर टूटते हुए देखकर मैं वनमे निकल गया और सच्चे सुखकी खोज करनेका निश्चय किया। बुद्धके समयके युद्ध, हिंसा, अराजकता, अन्याय आदि परिस्थितियोपर दृष्टि दौड़ानेसे उनका यह कारण बहुत ठीक जॅचता है। वृद्धावस्था, रोग, मृत्यु इत्यादि देखकर वे भयभीत हुए होते, तो ज्ञानप्राप्तिके बाद वापस उसी ससारमें इस प्रकार वे लीन न हुए होते! नगर पर्यटनके समय वृद्ध, रोगी, शव और योगीको देखनेके कारण सिद्धार्थ वनमें चले गये, यह अतिरंजित ही लगता है।

गीता और बुद्ध दोनोने ही सारे संसारके साथ समभाव और अपरि-ग्रहका उपदेश किया। भिक्षुओंके लिए कुछ भी सामग्री न रखनेका नियम ही था। बुद्ध सामान्य जनतासे लेकर राजा-महाराजाओ तक से दान देनेके लिए कहते। बड़े २ बुद्ध विहार, मदिर, धर्मशाला, कला

और संस्कृतिके केन्द्र उन्हीं दानोंसे तैयार किये गये। एक बार उनसे पूछा गया कि जीवनमें सबसे बुरी बात अथवा अपयश कौन-सा है? बुद्धने उत्तर दिया "संपत्ति संचय! जिनके पास बहुत अधिक संपत्ति होकर भी जो अकेले ही उसका उपयोग करते हैं। उनके इस कामके सिवा बुरी बात दूसरी नहीं है। यह संसारका सबसे बड़ा पराजय है।"

दूसरेने पूछा, "जीवनमें सबसे अच्छी बात अथवा मधुर रस कौन-सा है?"

बुद्ध – सत्य! सत्यही वाणीका मकरन्द और सत्यही धर्म का प्राण है। उसीसे विश्वप्रेमका उद्भव होता है?"
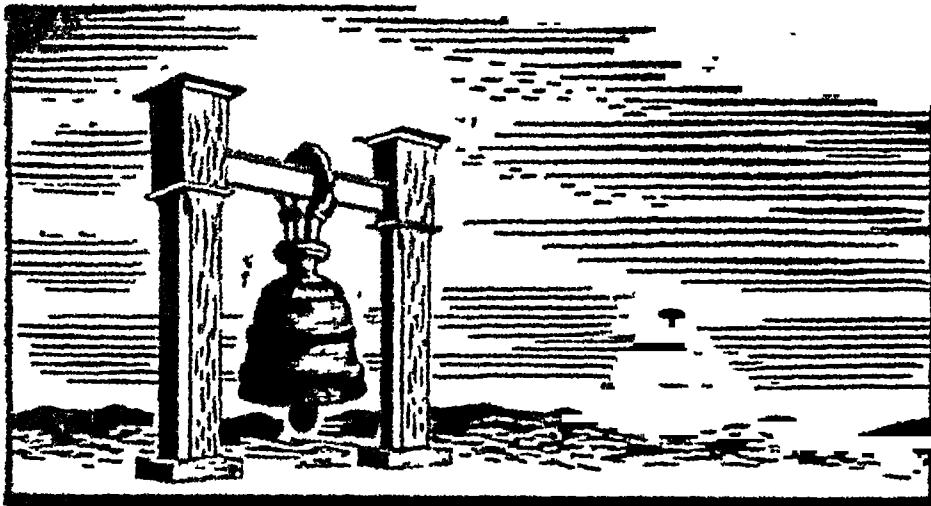
चमत्कारके लिए स्थान नहीं !
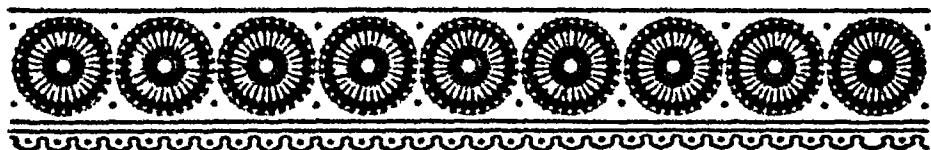
बौद्धग्रंथोंमें बुद्धके स्पर्श करतेही रोगोसे मुक्त होनेसे लेकर मृतकको जीवित होने तकके अनेक चमत्कारोके वर्णन किये गये हैं। ईसा मसीह, शंकराचार्य, मुहम्मद पैगंबरके बारेमें भी ऐसे उल्लेख पाये जाते हैं। परन्तु बुद्धका दृष्टिकोण बुद्धिवादी था। उन्होंने कभी ऐसा भाव मनमें नहीं लाया कि संसारकी पहेली सुलझाने के लिए मुझे ईश्वरी प्रेरणा और सत्ता प्राप्त हुई है। इस सम्बधमे आगेकी घटना स्मरणीय है।

एक बार किशागौतमी नामक स्त्री अपने मृत बालकका शव लेकर क्रोधमें बुद्धके पास आई। उसने बुद्धसे प्रार्थना की कि चाहे जैसे मेरे बच्चेको पुनर्जीवित करो। बुद्धने शांत भावसे कहा, "बहन, जिस घरमे अबतक मृत्यु न आई हो ऐसे घरसे मेरे लिए थोड़ा-सा राई और नमक ला दो। मै तुम्हारे बच्चेको जिला दूँगा"। वह स्त्री सब जगह ढूँढती रही; पर उसे ऐसा घर न मिला। प्रत्येक परिवारमें कभी न कभी मृत्यु आई ही थी। स्त्री मनही मन प्रभावित हुई और उसने बुद्धका पॉव पकड़ा।

अपने धर्म और तत्त्वज्ञानके बारेमें भी बुद्धने अधिक ढकोसला नहीं किया। उनकी रायमें कोई भी संप्रदाय स्वीकार करनेसे सत्यसंशोधनकी जवाबदारी अच्छी तरह पूर्ण नहीं होती। "जो मूल्य अंडेके भीतर रहने-वाले बच्चेकी संसारके बारेमें की गई कल्पनाओंकी हो सकती है, वही कीमत अनेक निष्कर्ष और मीमांसाओंका दिया जा सकता है। उन्होंने स्पष्ट कहा।

तेविज्ज सूत्रमें भी बुद्ध कहते हैं, "धर्मोपदेशक ब्रह्मके बारेमें बोलते हैं, पर ब्रह्मका उन्हें कभी दर्शन नहीं हुआ होता। यह वैसाही है जैसे महल कहाँ तैयार करना है, इसकी जानकारी न रहते हुए भी कोई व्यक्ति सीढ़ियॉ बनवाने की तैयारी करे, स्त्री कौन-सी है, यह मालूम न रहते हुए भी कोई प्रेमके चक्करमें पड़े।"

बुद्ध अपने आपको तथागत कहते थे। तथागतका अर्थ उन्होंने वाणीके अनुसार चलनेवाली प्रवृत्तिका अथवा पहलेके गुरुकी परंपराओ पर चलनेवाला और उसमें अपनी ओरसे नया कुछ भी न कहनेवाला प्रगट किया था। "मेरा ऐसा कोई खास तत्त्वज्ञान नहीं। निश्चित साचेका सत्य मुझे मालूम नहीं।" ऐसा साक्रेटिसका कहना था। ईसा मसीहको

भी निश्चित मतके बारेमें घृणा थी । महात्मा गांधीने भी कहा था कि गांधीवाद नामक कोई चीज नहीं । सभी महान तत्त्वज्ञानियोंका ऐसा ही है ।

बुद्धने अपने अनुयाइयोंको बिलकुल सादे नीतिमार्गका उपदेश दिया। शिष्योंके उन्होंने दो विभाग किये । एक विभाग भिक्षुओंका, उसमें सभी संघोंको त्यागकर आये हुए लोग होते । उनके लिए उन्होंने दस नियम बनाए थे । दूसरोंके लिए संसारमें रहकर भी अपनाने लायक अष्टविधि मार्ग बतलाये थे । उनके प्रवचन बहुधा सामान्य जनताके सामने होते थे ।

बुद्धकी कीर्ति चारों दिशाओंमें फैल गई । तमाम सम्राटोंकी ओरसे उन्हें बुलावा आने लगा । चारों ओर उनका परिभ्रमण शुरू था । सब ओर बुद्धका, संघका और धर्मका जयजयकार हो रहा था ।

महाभारतके युद्ध और पौराणिक कालके पश्चात, अर्थात् इंद्रप्रस्थके पांडवका राज्य समाप्त होनेके बाद भारतमें कोई भी प्रसिद्ध सम्राट न रहा । छोटे-छोटे प्रादेशिक राज्य अस्तित्वमें आते थे । वे बहुताश जाति और वंशके होते । प्राचीन बुद्ध ग्रंथोंमे अंग, मगध, काशी, कोशल, व्रज, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वल, अवंतिक, गाधार और कंबोज सोलह जातीय राज्योंका उल्लेख मिलता है । जातक कथाओंमें शिवि, सौवीर, भद्र, विराट और उद्यानके नाम आते हैं । इन राज्योंमे बारबार युद्ध होते । वैचारिक क्षेत्रोंमें भी अराजकता फैली थी । पशु-पक्षियोंकी पूजा, जादू-टोना, मत्र-तंत्र, यज्ञ-यागको प्रधानता मिली थी। पर अद्वैतकी ओर जानेवाला एकही प्रवाह बहता था । बुद्धने वैचारिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रोंकी अराजकता भी नष्ट की । यह उनका बहुत बडा कार्य कहना चाहिए । प्रत्येक राज्योंके आपसके युद्ध उन्होंने रोके । इसके लिए वे अनेक उपाय करते । एक उदाहरण देखिए —

एक बार पानीके बॉधपरसे दो राज्योमें घनघोर युद्ध छिड़ गया, इतने में बुद्ध आये। कुछ समय तक सबसे शस्त्र नीचे रखनेकी उन्होने प्रार्थना की और दोनों राजाओको अपने पास बुलाकर पूछा —

" हे पराक्रमी राजाओ, आप लोगोके लिए मिट्टीकी कुछ कीमत है क्या ? "

राजाओने उत्तर किया — " नही ’ [illegible]

बुद्ध — " अच्छा, पानीका विशेष मूल्य है क्या

राजा — " नहीं महाराज ! "

बुद्ध — " मनुष्यके रक्तका कुछ मूल्य है क्या ? "

राजा — " जी हाँ महाराज ! मनुष्यका रक्त बहुत ही कीमती है।"

बुद्ध — फिर, जिस मिट्टीकी कोई कीमत नहीं, उसके लिए आप लोग अमूल्य रक्त क्यो बहा रहे है ?

राजाओने लड़ाई बंद-कर दी ।

बुद्धने कृत्य, दृष्टि और उद्दष्टि तीनो प्रकारकी हिसाका निषेध किया था। 'पर उनका उपदेश था कि भिक्षामे मांस मिल गया तो खानेमें कोई हर्ज नहीं। इस विषयको लेकर उनके कुछ शिष्योमें मतभेद भी हुआ था। प्रत्येक बातोकी ओर बुद्धिवादी दृष्टीकोणसे देखनेकी अपनी पद्धतिके कारणही वे अहिसा और मांसाहार दोनोका सामंजस्य कर सके ।
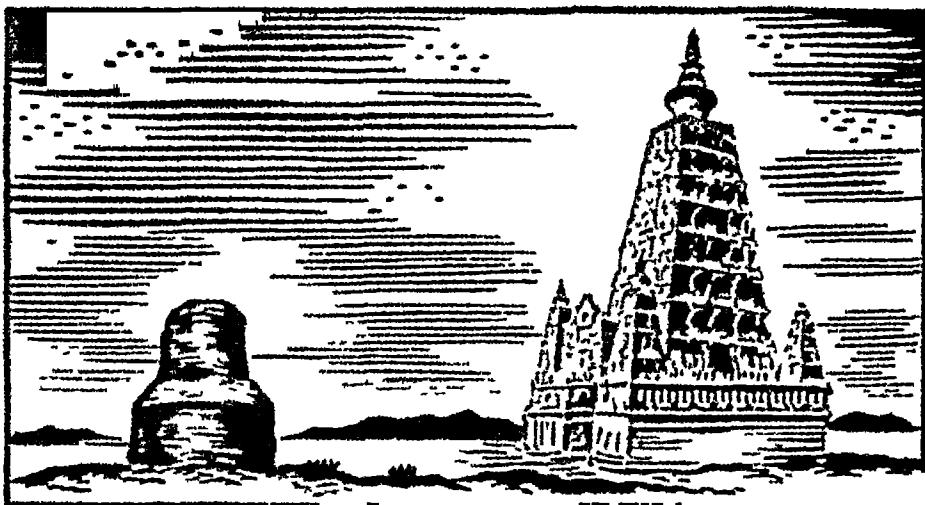
पिता-पुत्रकी हृदयस्पर्शी भेंट
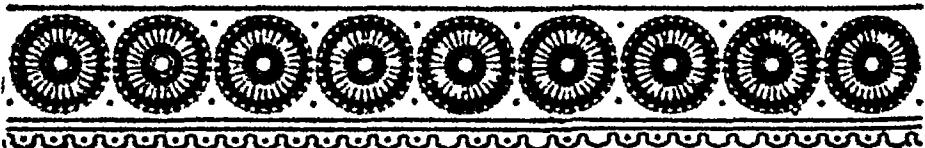
अपने पुत्रके बोधिप्राप्तिकी खबर सुनतेही शुद्धोदनको हर्ष हुआ। बुद्धकी प्रभा चारोंओर छिटकती हुई देखकर वह मनही मन आनंदित हुआ। उसका एक मन बुद्धसे मिलनेके लिए बेचैन होता, पर दूसरा मन अहंकारकी चुभन और अपेक्षाभंगका भान करा देता। रानी महाप्रजावती राजासे बारबार आग्रह करती कि बुद्धको अपने राज्यमें बुलाकर उनका स्वागत करें। यशोधरा कुछ भी न बोलती थी।

राहुल आठ वर्ष का था। वह धनुर्विद्या, वेद, उपनिपद, शास्त्र,- पुराणके अध्ययन कर रहा था। अपनी माँके संन्यासवृत्तिका -और पिताकी अनुपस्थितिका अर्थ उसकी समझमें नहीं आता था। बीच-बीचमें वह यशोधरासे अनेक प्रश्न पूछता – "तेरे पिता महान जगत् उद्धारक है, अब वे सिर्फ तेरे ही पिता न रह कर संसारके पिता बन चुके है।" यशोधरा उसे समझाती।

बुद्धको बुला लानेके लिए राजा शुद्धोदनने दूत भेजा। वह बुद्धके यहाँ गया। पर वहाँ बुद्धका प्रदीप्त व्यक्तित्व देखकर और उनकी वाणी सुनकर वह अपने आपको भूल गया। इसी तरह एकके बाद एक कई सेवक राजाने भेजे, पर वे सबके सब बुद्धके पास रह कर भिक्षुक वन गये। अन्तमें राजाने अपने मंत्रीको भेजा। मत्री द्वारा राजाने सदेश भेजा कि बुद्ध अब मै बूढ़ा हो चुका हूँ, इस संसारसे कूच कर जानेसे पहले एक बार आँखभरकर देख लेने दो! मत्री राजगृहसे बुद्ध बिहारमे गया और उसने बुद्धसे राजाका संदेश कहा। यह मंत्री भी बुद्धका शिष्य बन गया। पर वह अपना कर्तव्य बिना भूले, बुद्धके मनमे परिवर्तन करता रहा।

आखिर बुद्धने सभी भिक्षुओको कपिलवस्तु चलनेका आदेश दिया। मंत्री सबके पहले निकला। बुद्धके आने की खबर सुनतेही राजा, रानी और प्रजाजनोको बड़ी प्रसन्नता हुई। स्वागतकी तैयारी शुरू हुई। चारो ओर ध्वज-पताका लगाये गये। कुछ दिनो बाद बुद्ध अपने अनुयायियोके साथ वहाँ आये। राजाने सीमा तक आगे बढकर उनका स्वागत किया। शुद्धोदन अपने पुत्रके सामने पहली वार ही झुका। उसका अतःकरण भर आया। अखोसे आँसू बहने लगे।

बुद्धने पिताको आलिगन किया। बुद्धके तेजपुंज और दैवी सौंदर्यसे लोग मुग्ध हो गये।

पिता पुत्रको नमस्कार करे, यह बात कुछ शाक्य सरदारों और प्रतिष्ठित व्यक्तियोंको पसंद नहीं आई। बुद्धने मनही मन ताड लिया। क्षणभरमें उन्होंने स्वर्गमें उड़ान मारी और उनके शरीरसे तेजस्वी अग्निशलाका फूट पडी। सरदारोंके गर्व नष्ट हुए। बुद्ध ग्रन्थोंमें कहा गया
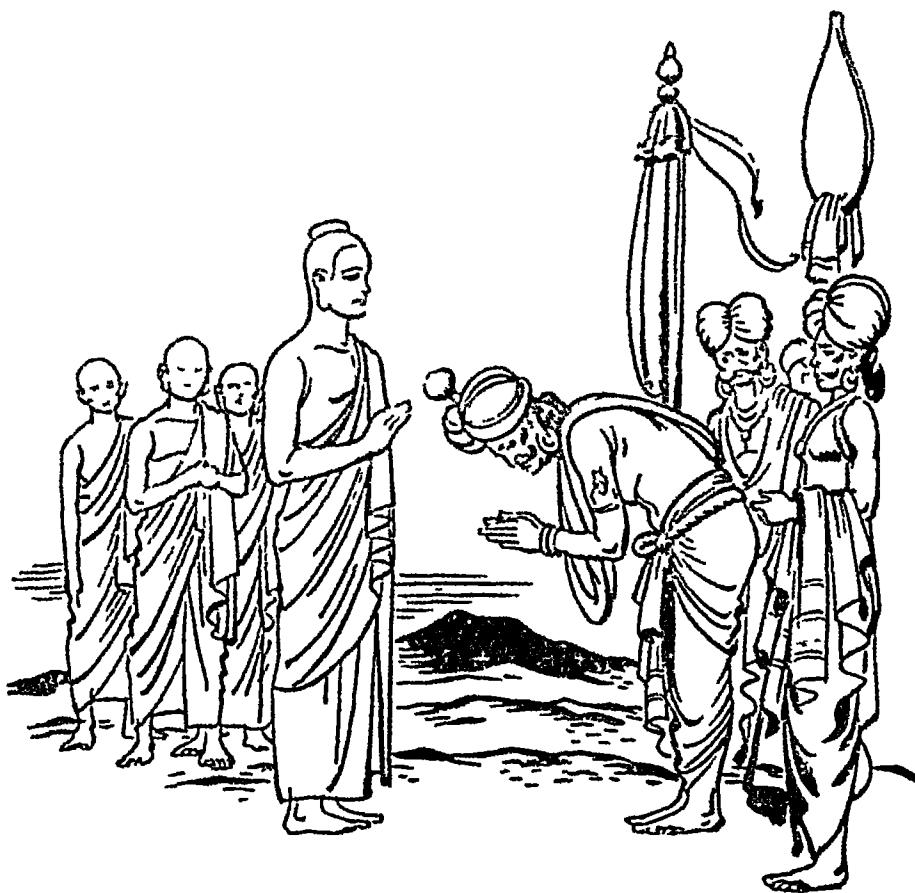
शुद्धोदन पुत्रके सामने पहली बार ही झुका।

क्षणभरमे उन्होने स्वर्गमे उड़ान मारी.. ...

है कि लोगोको इस बातका विश्वास हुआ कि सिद्धार्थ शुद्धोदनका पुत्र अवश्य है पर 'भगवान् बुद्ध' औरो की अपेक्षा महान् और श्रेष्ठ है।

पुत्रको देखतेही राजा-रानीके मनमे अभिलाषा निर्माण होना स्वाभाविक ही था। राजाके मुखसे स्वभावतः निकल गया : "सिद्धार्थ, अब बुढापेमे मुझे कौन सहारा देगा? तुझे यह सन्यास-मार्ग स्वीकार करनेकी क्या जरूरत थी?"

बुद्ध कुछ रुके। फिर अपने मृदु स्वरमे बोले, "महाराज, सब दुखोंकी मूल तृष्णा है। तृष्णा अर्थात् जीवनका मोह! अज्ञान और तृष्णासे वासनाका जन्म होता है। आत्मा वासनाका दास बन जाती है। वह यदि बंधनोसे मुक्त हो सके, तो निश्चितही आनन्द होगा। अज्ञान और तृष्णाका नाश अर्न्तज्ञान और सहजस्फूर्त दैवी ज्ञानसे होता है। अच्छे मार्ग और नीतिमार्गपर चलनेवाला मन जो कुछ अच्छे काम कर सकता है, उन्हे हमारे लिए हमारे माता-पिता अथवा निकट सम्बंधी भी नहीं कर सकते।

राजा : "पर बुद्ध तुम जो कुछ कहते हो, उसके लिए पुत्रको माता-पिताका, पतिको पत्नीका त्याग करना आवश्यक है? उसके लिए अकर्मण्यता स्वीकार की जाय?"

बुद्ध : " महाराज, प्रेमसे हृदयको मुक्त करना चाहिए । मोक्ष-सुख देनेवाले प्रेमके अन्तर्गत सभी सत्कर्मोंका समावेश होता है। प्रेम प्रकाश और तेज देता है । जिस प्रकार माता अपने प्राणोंकी बाजी लगाकर इकलौते पुत्रको सँम्हालती है, उसी प्रकार मनुष्यको सारे संसारके बारेमे प्रेम रखना चाहिए । प्रेममें अपना पराया भाव नहीं । अपने माता-पिताको मैं जितना प्यार करता हूँ, उतना ही दूसरोंके माता-पिताको भी करता हूँ । कुछ लोग कहते हैं कि बुद्ध बच्चोंको माँ-बापसे अलग करता है, स्त्रियोंको विधवा बनाता है और परिवारका ह्रास करता है । परन्तु तथागतने ऐसा कभी नहीं कहा कि जीवन समाप्त कर दो या जीवनसे भाग जाओ । बल्कि समृद्ध और उन्नत जीवनका मार्ग मैं दिखाता हूँ । मैं अकर्मण्यता नहीं सिखाता । मैं बराबर कहता हूँ कि कुछ अनिष्ट मत करो।

" महाराज, आप जिसे जीवन समझते हैं वह संपूर्ण जीवन नहीं है। वह तो जीवनका एक अंश है, शृंखलाकी एक कड़ी है । जीवन एक कड़ी या पुल है । इसपर घर मत बनाओ । यह जीवन नदी है । इसके किनारेसे चिपके रहनेका प्रयत्नभी मत करो । वास्तवमे जीवन एक जबरदस्त खेल है । उसमे लीन मत हो जाओ अथवा दुर्लक्ष्य भी मत करो । व्यायामशालाके समान मनकी तैयारीके लिए उसका उपयोग करो । यह जो कुछ दिखाई देता है, उनके पीछे मनही है । उस मनपरही मनुष्यकी दशा अवलम्बित होती है ।

" जन्म, मृत्यु, रोग, विनाश, अप्रियकी प्राप्ति, प्रियका वियोग इन सबके कारण हमे दुख होता है । जन्म-मृत्यु, राग-द्वेष आदि सर्वत्र हैं । अपने जीवनके विरोधी और विसंगत अंग हैं । सारे संसारमे विरोध भरा है । इन विरोधोंसे छुटकारा पाना " मुक्ति " है । "

बुद्धके इस प्रवचनसे राजा-रानी सहित सब लोग मंत्रमुग्ध हो गये ।
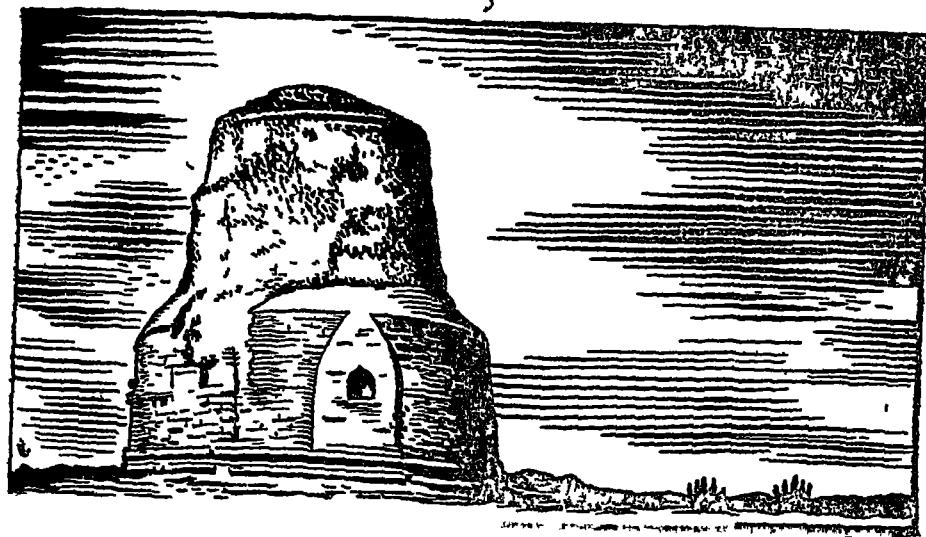
यशोधराका गौरव
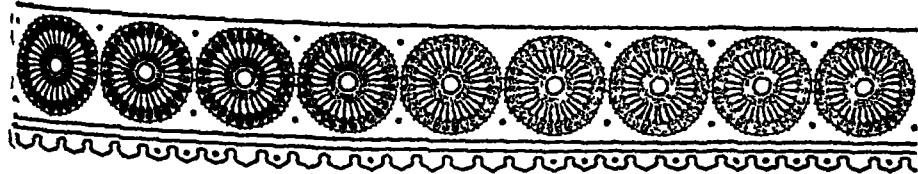
प्रवचन समाप्त हुआ। लोग बुद्धको नमस्कार करके अपने-अपने घर गये। उस भीडमे बुद्धकी घूमती हुई नजरे यशोधराको ढूँढ रही थीं। वह कहीं दिखाई न पड़ी। उन्होंने अपने मनमे समझ लिया, यशोधरा रूठी होगी। मुझपर नाराज होना स्वाभाविक ही है।

दूसरे दिन हमेशाकी तरह बुद्ध सब शिष्योंके साथ शहरमे भिक्षा माँगने निकले। अपने राजपुत्रको भिक्षा माँगते देखकर कपिलवस्तुवासियोंको

राजमहलमें हमने तुम्हारे लिए पाँचों पकवान तैयार किये हैं।

अजीब-सा लगा। यह खबर राजाके कानपर पहुँचते ही वह दौड़कर आया। बुद्ध, भिक्षा माँगनेकी तेरी परिस्थिति नहीं. तेरे हाथमें यह भिक्षा-पात्र शोभा नहीं देता। राजमहलमें हमने तुम्हारे लिए पाँचों पकवान तैयार किये हैं। सब तुम्हारी राह देखते हैं।

बुद्धने शान्तिसे कहा, "महाराज, पहले मैं आपका पुत्र था। आज मैं एक भिक्षुक हूं। भिक्षा माँगना मेरा धर्म है। भिक्षा माँगनेवाले मनुष्यका अहंकार नष्ट हो जाता है। वह दीन होता है। मनसे विशुद्ध और श्रद्धावान बनता है। आपने मुझे भिक्षा माँगनेके लिए मना किया, इसके पीछे आपका अहंकार ही है। मैंने अपने और दूसरोंकी शान्तिके लिए यह भिक्षामार्ग स्वीकार किया है।"

बुद्धका कथन मनही मन राजाको जचा। उसका अहकार और घरानेकी प्रतिष्ठाही बाधा बनी थी। पर यह मालूम होनेपर भी अपनी उपस्थितिमे अपनी प्रजाके सामने बुद्धका झोली फैलाना शुद्धोदनको पसंद नहीं आया। दो, तीन घर घूम लेनेके बाद बुद्धको राजा महलमें ले गया। वहो भोजनकी सारी व्यवस्था हुई ही थी। अनेक वर्षो बाद पिता-पुत्र एक साथ बैठकर भोजन कर रहे थे। शुद्धोदन प्रेमसे भर आया। वह बोला, "बेटा, सोनेके पात्रमे अमृतमय भोजन करनेवाला तू अब भीखके टुकडोंपर

जीता है, यह विचार मनमें आतेही मेरा अंत:करण मसोस उठता है। सचमुच तू संसारसे अलग है। मुझे सूझता ही नहीं कि तुझसे क्या कहा जाय!" बुद्ध कुछ न बोले। वे सिर्फ हँसे। कुछ देर बाद रानी प्रजावती और अन्य स्त्रियाँ घरसे आई। प्रजावतीसे पैदा हुये शुद्धोदनके लड़के नन्द, देवदत्त और अन्य राजकुमार भी आये। सब लोग बुद्धका दर्शन करके गये। पर आज भी यशोधरा नहीं आई। राहुल नहीं दीखा। अन्तमे बुद्धने स्वय राजासे कहा, "महाराज, मुझे यशोधराके महलकी ओर ले चलिए। मुझे उसका दर्शन करना है।"

जिस समय बुद्धने यशोधराके महलमे पॉव रखा, वह पूजामे तल्लीन थी। खुले हुये बाल, पीले वस्त्र, व्रत-उपवाससे क्षीण हुआ शरीर इस अवस्थामे यशोधराको देखते ही स्वय बुद्ध चकित हुए। वे एकटक उसकी ओर देखते रह गये। बहुत प्रयत्न करके यशोधराने अपने ऑसुओको रोका था, पर सामने बुद्धकी मूर्ति देखतेही बॉध टूटकर बह चला। हृदयके घावोको भुलाकर यशोधरा सागरकी ओर जानेवाली नदीके समान दौड़कर बुद्धके पॉवोपर गिर पड़ी। उसकी ऑखोसे अपार ऑसू आ रहे थे। मुँहसे शब्द न निकल रहे थे। सारा शरीर कॉप रहा था। "स्वामी..." इतनाही वह किसी तरह बोल सकी और फिर उसने बुद्धके पाँवोपर सिर रख दिया।

"यशोधरा उठ! तू महान है, तेरा त्याग महान है। और तुझे महान फल भी मिलनेवाला है। मै तेरा स्वामी नहीं। तू ही अपनी स्वामिनी है। मेरी अपेक्षा तू श्रेष्ठ है। मुझे क्षमा कर।" कहकर बुद्धने उसे उठाया। इसके बाद यशोधराने बालक राहुलको बुद्धके चरणोपर डाला।

उस दिन सायंकाल बुद्धने सारे कपिलवस्तुवासियोके सामने प्रवचन किया। शहरके सभी स्त्री-पुरुष और बच्चे हाजिर थे। बुद्धने उन्हे सरल

ढगसे धर्मसूत्र समझाया। यशोधरा, राहुल, राजा और रानी प्रवचनमे आये थे। उस प्रवचनमे बुद्धका सारा ज्ञान, सारी कोमलता, सारी करुणा प्रगट हुई थी। एक ऊँचे व्यासपीठपर पद्मासन लगाकर वह तेजस्वी महापुरुष बैठा था। डूबते हुए सूर्यका चक्र उसके चेहरेके पार्श्व भागमे शोभित था। चेहरेपर मुस्कानकी छटा और आँखोमे अत्यत करुणा थी। उसके दर्शनसेही संपूर्ण शंकायें नष्ट हो जाती थीं। सब लोग उसके एक एक शब्द आत्मसात कर रहे थे। सब लोगोंको उन्होने हिंसा न करने, जो अपने लिए लाभप्रद न हो उसके बारेमे उदासीन रहने, वासनाओंको पूरा न करने, असत्यसे दूर रहने और मादक पदार्थाओंका सेवन न करनेके पॉच उपदेश दिये।

“सज्जनो! धर्मपरिवर्तनसे मेरा कोई सरोकार नहीं। मुझे केवल अपना पंथ नही बढ़ाना है। वैदिक धर्म, पूजा-अर्चना आदिकी टीका टिप्पणी करना तथागतका काम नहीं। परन्तु मेरी रायमे आमिषपूजा, यज्ञ-याग और बलिकी अपेक्षा धर्मपूजा श्रेष्ठ है। धर्मकी बुनियाद अधश्रद्धा न होकर खुली दृष्टिसे अंतःकरण शुद्ध करना है। इसी उद्देश्यसे मैंने अपना मार्ग आप लोगोंके सामने रखा है। किसीके सम्बन्धमे मनमे द्वेषभाव न रखने, सम्पूर्ण चराचर सृष्टिपर निःस्वार्थ प्रेम करनेका अर्थ ही ब्रह्मविद्या है। आपको यह जँचता है या नहीं?” इस प्रकार बुद्ध द्वारा खुले आम प्रश्न करतेही सम्पूर्ण उपस्थित व्यक्तियोने हामीं भरी। बुद्धकी पहलेकी राजधानी उनके नये मार्गका प्रमुख केन्द्र बनी।

बुद्ध जानेवाले हैं, यह मालूम होते ही यशोधराने राहुलको सजाकर उनके पास भेजा। मठमे पहुँचकर राहुलने बुद्धका चरणस्पर्श किया। "पिताजी, मेरा उत्तराधिकार दीजिए !" वह बालक हठ करने लगा। बुद्धने उसे उठाया और शिष्योकी ओर मुड़कर बोले : "भिक्षुओ, यह मेरा पुत्र मुझसे उत्तराधिकार माँग रहा है। मनुष्यके लिए धर्मके अतिरिक्त और संघके अतिरिक्त दूसरा कौन-सा उत्तराधिकार उपलब्ध है ? इसे अपने साथ ले लो। " राहुल भिक्षु बन गया। उसके बाद बुद्धका सौतेला भाई और अब राज्यका उत्तराधिकारी कुमार नंद भी आया। उसने भी बौद्ध भिक्षु बनने की इच्छा प्रकट की। बुद्धने उसे भी संघमे शामिल कर लिया। राजा को मालूम होतेही वह घबराया। जल्दी जल्दीमे वह मठमे आया और बुद्धसे बोला : "भगवन्, मेरे सभी पुत्र-पौत्र भिक्षु बनाएँगे, यही दैवयोग है क्या ?

"पिताजी, मेरा उत्तराधिकार दीजिए !"

एक चील्ह आई और झपटकर देवदत्तके बालोंके बीचसे आभूषण उठा ले गई।

राजपुत्रोको देखकर बुद्धको अपार आनद हुआ। उनका एक चचेराभाई आनंद पहलेसेही संघमे शामिल हुआ था। उन कुमारोमे बहुत थोड़ेही बुद्धके प्रवचन समझते थे। पर बुद्धको लगता था कि प्रेम और श्रद्धाके मार्गसे ही मोक्ष अथवा निर्वाण प्राप्त होता है। प्रेम और करुणा धर्मकी प्राण-दायी शक्ति होते हुए भी केवल प्रज्ञासे सभी प्रश्न हल नहीं होते, समालोचक बुद्धि अच्छी है। पर वे कहते रहते कि एक विशेष सीमाके बाद वह भी पगु हो जाती है। एक प्रवचनमें उन्होने कहा है: “जिस प्रश्नका उत्तर आप चाहते है, परन्तु प्रज्ञा उस प्रश्नका उत्तर नहीं दे सकती हैं, तो आप मेरे मार्गसे आयें और स्वयं उत्तर प्राप्त करे। इस संसारमें कितनी ही बातें सर्व सामान्य बुद्धि से अगम्य हैं। इसलिए वह नहीं है, ऐसा हम कैसे कह सकते है।”

एक बार मालक्यपुत्त नामक भिक्षुक इसलिए नाराज हुआ कि बुद्ध हमारे सब प्रश्नोके उत्तर नहीं देते! “मेरी संपूर्ण शकाओंका निवारण

[५४] . . . .
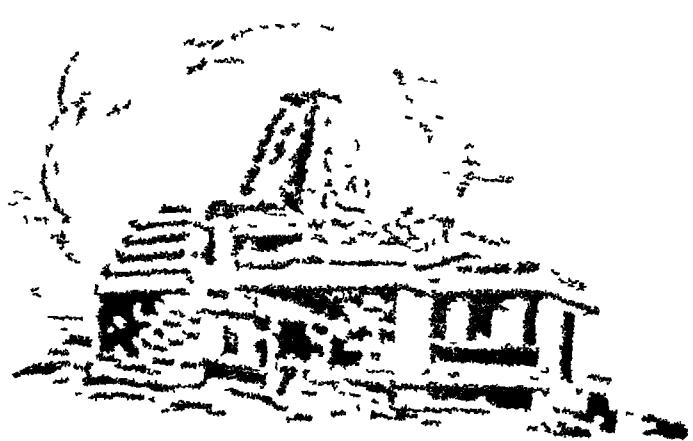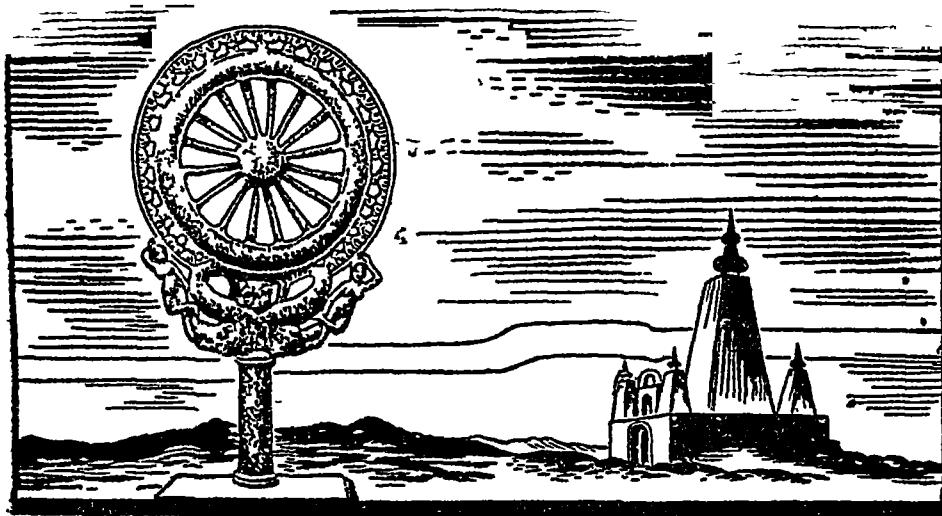
बुद्धकी दिनचर्या
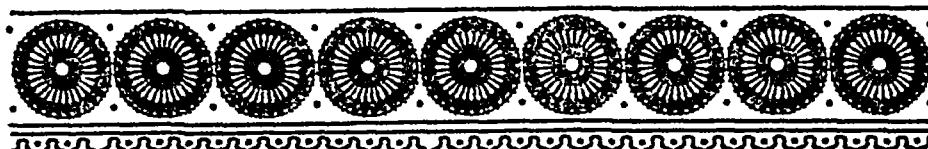
कपिलवस्तुसे अपने अनुयायिओंके साथ बुद्ध 'राजगृह' वापस लौटे। वहाँ अनाथपिण्डिका नामक एक धनवान व्यापारी अपनी नगरी— श्रावस्ती ले जानेके लिए आया था। बुद्धने उसका निमंत्रण स्वीकार किया। अनाथपिण्डिका प्रसन्न हुआ। वह पहले ही श्रावस्ती पहुँचा और बुद्धके स्वागतकी तैयारी जोरसे आरम्भ की। एक गाडी सोनेकी मोहर देकर उसने एक सुन्दर बगीचा खरीदा। वहाँ एक भव्य विहार बनवाया। इस विहारका

वस्तुओंसे अधिक सामग्री अपने पास इकट्ठा करनेकी मनाही थी। संघके लगभग दो सौ नियम थे।

स्वयं बुद्ध रोज प्रातःकाल उठकर ध्यान करते। अपने पंथ और उपदेशोंके विषयमे वे चिन्तन करते। उस कालमें बुद्ध तत्त्वज्ञान, मानव को उपलब्ध होनेवाला सर्वश्रेष्ठ नीतीतत्त्व था। उसका निर्माण शास्त्रशुद्ध नीव और मनोविश्लेषण पर अधारित था। उसमे धर्म, तत्त्वज्ञान रहस्यवाद, आधिभौतिकता, मनोविज्ञान, योग, आदिसे लेकर अनेक विधियों तककी बहुत-सी बातोंका समावेश था। परन्तु जीवनकी अपेक्षा जीवनका तत्त्वज्ञान गतिमान रहना चाहिए और उसके लिए निरन्तर चिन्तन और मनन करना आवश्यक है, ऐसा बुद्धका कथन था।

चिन्तनके पश्चात् वे नगरमें भिक्षाके लिए जाते। कई बार वे अकेले जाते तो कई बार शिष्योके साथ। पर धूप हो, आँधी हो, वर्षा हो, बुद्धने भिक्षा माँगना कभी छोड़ा नही। उन्हें लगता कि यह भिक्षु-जीवनका महत्त्वपूर्ण कर्तव्य है। मठमें वापस लौटने पर अपने शिष्योको इकट्ठा करके वे रोजके अनुभव, छोटी-छोटी कहानियॉ आदि कहते और उनमें बड़े-बड़े तत्त्वज्ञानके दर्शन कराते रहते। स्वयं कोई भी निष्कर्ष न निकालकर वे शिष्योको ही विचार करनेको लगाते और उन्हे उस निष्कर्ष-तक पहुँचनेमे मदद करते।

इसके बाद बुद्ध भोजन ग्रहण करते। भोजन अत्यत सादा होता। पर भोजनकी ओर उनका ध्यान शायद ही रहता। इसके पश्चात् वे कुछ समय तक अपने कमरेमें आराम करते और सायकालके प्रवचनका विचार करते रहते। हर दिन सायंकाल खुला प्रवचन और शिष्योके प्रश्नोत्तर ये दो कार्यक्रम निश्चित थे। रातको बहुत देर तक यह प्रश्नोत्तर-चर्चा चलती रहती। इसका समय निश्चित न था। बुद्धको अपने समय की कोई खास
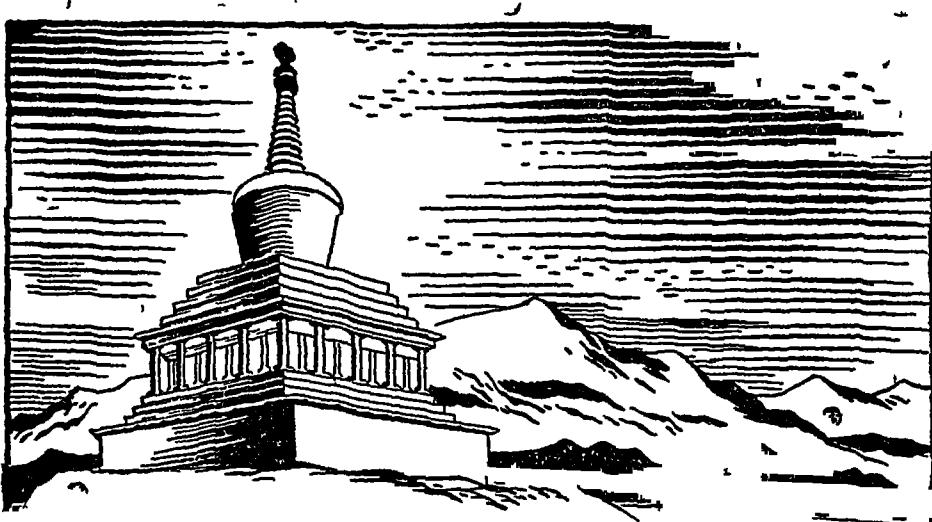
नर्तकी आम्रपालीका आदर
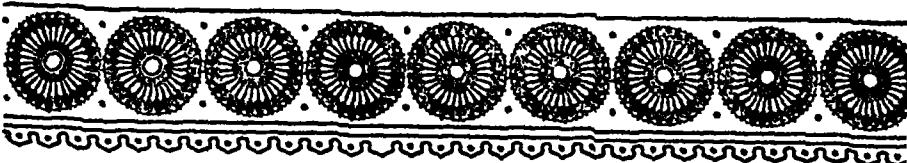
घूमते-घूमते बुद्ध वैशाली पहुँचे। वहाँ आम्रपाली नामक एक नर्तकी रहती थी। उस नर्तकीकी सुन्दरता और कलाकी कीर्ति चारो ओर फैल चुकी थी। देश-देशान्तरोके राजा-महाराजा, जमींदार, साहूकार उसके यहाँ आते रहते। आम्रपाली एक बहुत बड़े आम्रवनकी स्वामिनी थी। इसीलिए उसका यह नाम पड़ गया था। आम्रपाली मनही मन बुद्धपर मुग्ध थी। बुद्धको उसने प्रत्यक्ष देखा न था। पर उनकी प्रशंसा उसने

अपने अन्तर्ज्ञान द्वारा उसके मनकी द्विधा देखकर बुद्ध स्वयं बोले—"बहन बैठो।"

अत्यंत पवित्र है, पर अनेक सच्चरित्र समझे जानेवाले मनुष्य वास्तवमें वैसे नहीं होते। मनुष्यके स्वरूप या व्यवसायपर इसका निश्चय नहीं होता। आम्रपाली निर्वाण प्राप्त करेगी। मै देख रहा हूँ कि प्रत्येक जन्मोंमे इसकी ऐसी ही प्रगति होती आयी है।

बुद्धका यह अनपेक्षित अनुग्रह और अपने पूर्वजन्मका रहस्य मालूम होनेपर आम्रपाली अन्तर-बाह्यसे बदल गयी। उसने नम्रता पूर्वक बुद्धको अपने घर भोजन करनेके लिए बुलाया। बुद्धने उसका निमंत्रण स्वीकार किया। वैशालीमे यह मालूम होते ही कि बुद्ध आम्रपालीके यहाँ जाएँगे,

बुद्धने आनन्दपूर्वक भोजन किया।
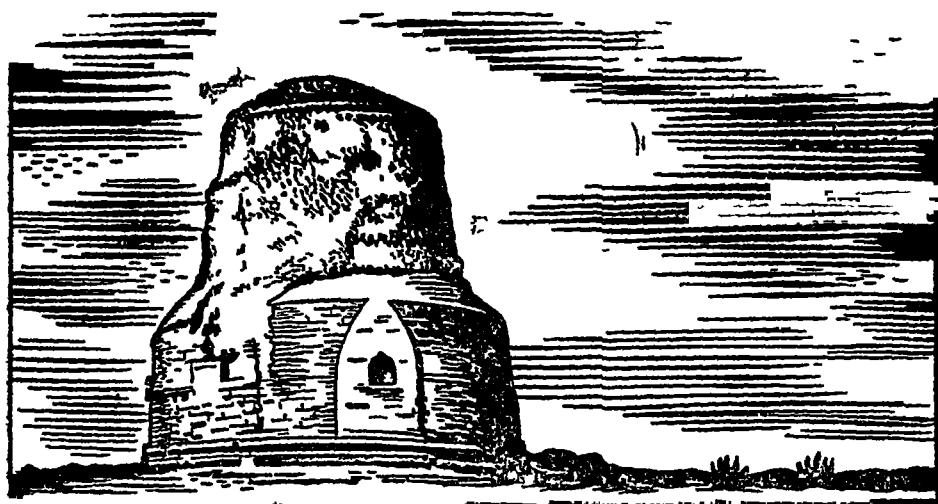
अजातशत्रुके षडयंत्र
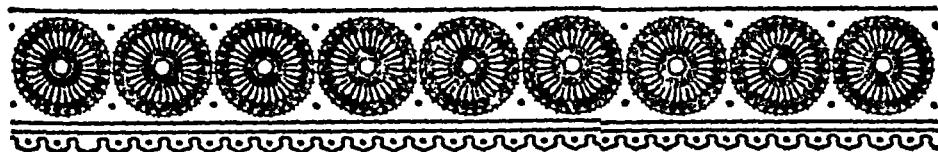
मगधसम्राट विम्वसार शुरूसे ही बुद्धप्रेमी था। राजा और उसकी बडी रानी वासवी बुद्धधर्मका प्रचार करते, उन्होने अनेक बुद्धविहार बनवाये। विम्वसारकी छोटी रानी छलना वैशालीके लिच्छवी राजघरानेकी थी। जैन तीर्थकर महावीर स्वामीकी वह निकट सम्वधी थी। राजाका अपने ऊपर विशेष प्रेम नहीं और राजा तथा बड़ी रानी बुद्धके पीछे पडकर इस देशमें उसके धर्मका 'प्रचार कर रहे हैं, यह छलनाको पसंद न

उस समय बुद्धने अपने स्थानसे बिना हिले शांति पूर्वक अपना दायाँ हाथ ऊपर किया। हाथी शांत हो गया। उसने सूँढ़ ऊँचा करके और सिर झुकाकर बुद्धको नमस्कार किया।

अजातशत्रुका मन उसे खा रहा था। माता-पिताकी स्मृति उसे स्वस्थ न रहने देती थी। सद्विवेक और बुद्धिका कष्ट उसे बराबर हो रहा था। नींदमें अपने दुष्कृत्योका स्वप्न वह देखता। जीते जी वह नरक-यातना भोग रहा था। आखिर बुद्धकी शरणमें गये बिना; शांति मिलनेवाली नहीं, ऐसा निश्चय उसके मनमे हुआ। अहंकारी अजातशत्रुने
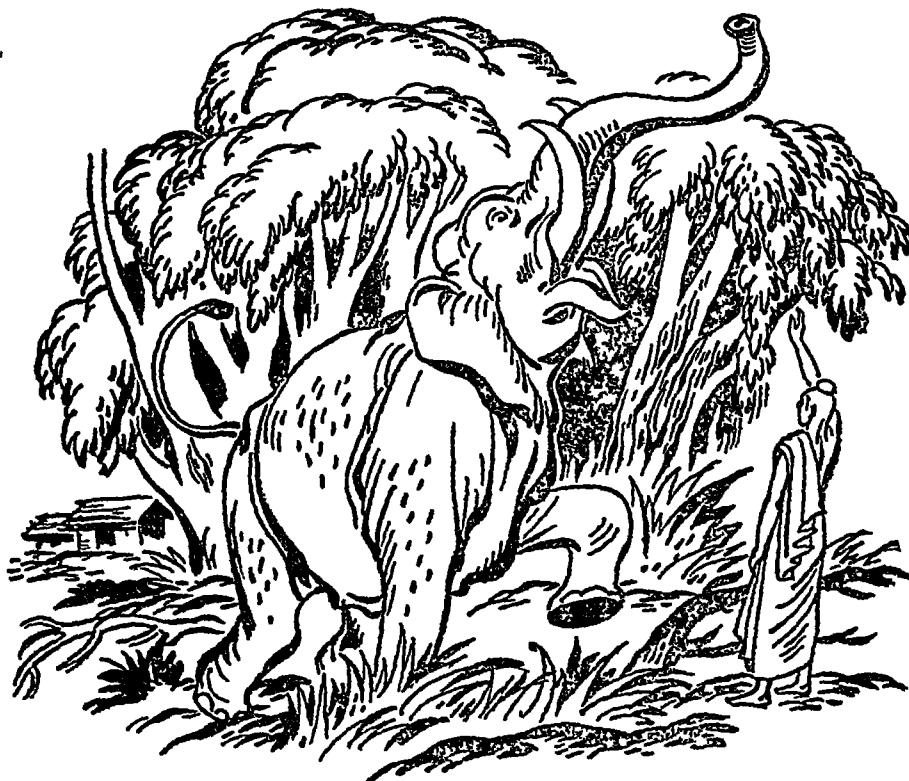
बुद्धने अपने स्थानसे बिना हिले शातिर्वपूक अपना दायाँ हाथ ऊपर किया।
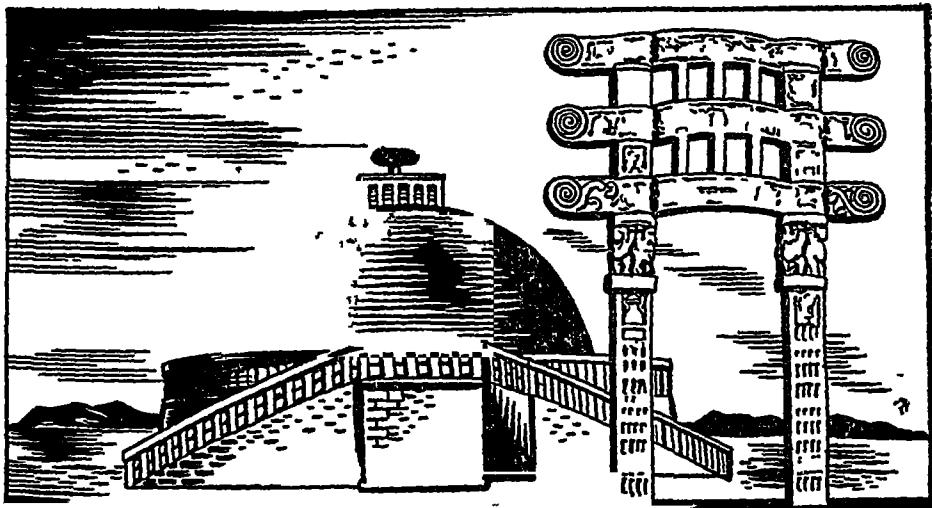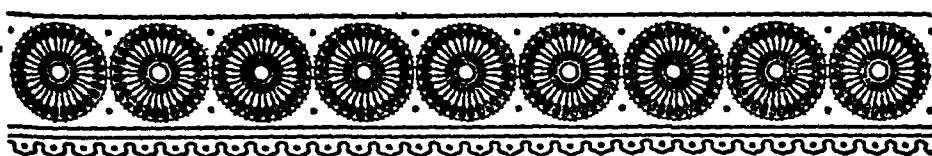
स्त्रियोंका संघमें प्रवेश

बुद्धविहारोंमें झगड़े लगाकर शिथिलता पैदा करनेमे स्त्रियाँ सबसे अधिक कारण हुईं। भिक्षुणियोमेंसे कुछ ससुराल या मायकेसे भागकर आई हुई होतीं। कुछ दुखी और कुछ सुख लोलुप। बुद्ध शुरूमे स्त्रियोको संघमें प्रवेश देनेके विरुद्ध थे। पर ऐसा हुआ कि—

राजा शुद्धोदन अपने आखिरी क्षण गिनते समय लगातार बुद्धकी याद कर रहा था। बुद्धने अपने अन्तर्ज्ञानसे पिताकी पुकार सुनी और वे

बुद्ध—स्त्रियोंको वह अधिकार और स्वतंत्रता है ही। धर्म स्त्री पुरुषका भेदभाव नहीं जानता। पर मैंने आपको दैनिक आचरणकी कठिनाई बताई। सुविधाके लिए हमने स्त्रियोंको संघमें नहीं लिया है।

प्रजावती—बुद्ध, स्त्रियाँ संघके नियम नहीं निभा सकेंगी, ऐसा तुम्हें लगता है क्या? स्त्रियोंपर तुम्हारा विश्वास नहीं? राजपुत्री यशोधराका आदर्श उदाहरण आँखोंके सामने होते हुए भी यह पक्षपात क्यों?

रानी प्रजावती, यशोधरा और अन्य महिलाओंकी बाते सुनकर आनन्द भी उनकी ओरसे बोलने लगा। तब बुद्धने उसे अपनी पिछली बात-चीतकी याद दिलाई।

एक बार आनन्दने पूछा था, "भगवन्, हम स्त्रियोंके बारेमे कैसे रहे?"

बुद्धने उत्तर दिया, "आनन्द, उनका दर्शन मत करो।"

आनन्द—पर उनका हमारा सरोकार आ ही गया, तो क्या करना?

बुद्ध—उनसे बोलो नहीं।

आनन्द—पर वे हमसे बोलें तो?

बुद्ध—अत्यन्त दक्ष रहो।

पर आनन्द इस स्मृतिके बाद भी बोला, भगवन्, आपका यह सिद्धान्त मुझे उस समय भी पसंद न आया था और आज भी नहीं जँचता। स्त्रियोंको संघमें शामिल न करके आप उन्हे पुरुषोंकी अपेक्षा हीन समझते हैं, ऐसा प्रगट होता है। अन्तमे बुद्धने प्रजावती, यशोधरा और अन्य स्त्रियोको संघमे शामिल किया। पर वे बोले "आनन्द, स्त्रियोको शामिल न करते तो संघ सैकड़ो वर्ष टिकता, अब वह पाँच सौ वर्ष ही टिकेगा।"

प्रजावती, यशोधरा और अन्य स्त्रियोने बुद्धका वचन असत्य सिद्ध करने के लिए जी-जानसे प्रयत्न किया। कपिलवस्तुसे वैशाली तक राजघरानेकी
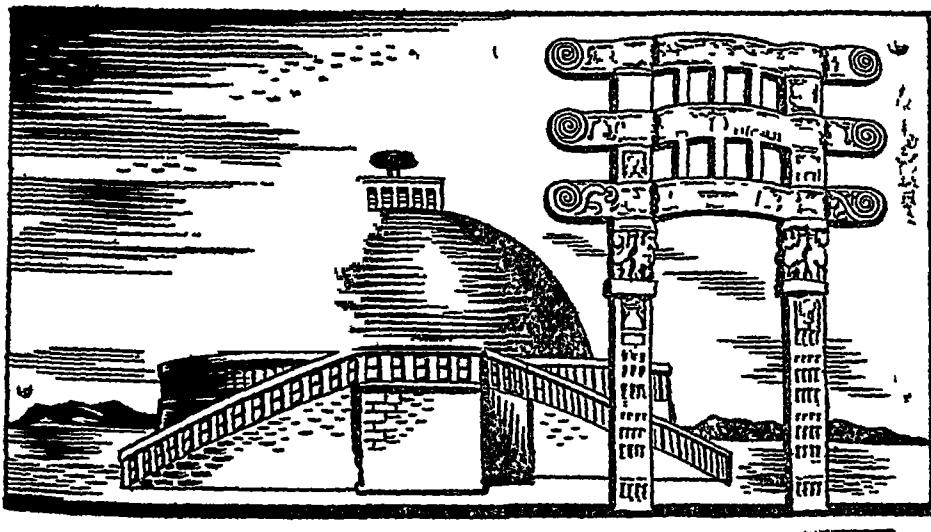
बुद्धके शिष्यगण
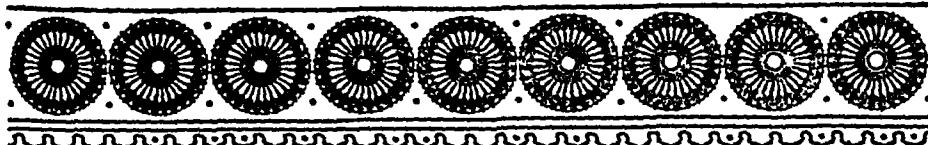
"हे भिक्षुओ, सुनो, मुझे अमरत्वका बोध हुआ है। मैं अब उसे संसारको बताऊँगा, लोगोंको धर्म सिखाऊँगा।" बोधि प्राप्त होनेके बाद बुद्ध द्वारा ऐसी घोषणा करनेपर सैकड़ो शिष्य उनके पास इकट्ठे हो गये थे। जगह-जगहपर बुद्धविहार खुल रहे थे। पर इन तमाम शिष्योमे आनन्द, सारिपुत्त और मोगल्लन् बुद्धको सबसे अधिक प्यारे थे। आनन्द और बुद्ध तो मानो लक्ष्मण और रामकी जोडी

थी। आनन्द अत्यंत भावुक स्वभावका और सहनशील वृत्तिका था। बुद्ध-तत्त्वज्ञानकी बारीकियोको समझनेकी उसकी पहुँच न थी, पर बुद्धपर उसकी अपार श्रद्धा थी। हमेशा वह बुद्धके साथ रहता। मृत्युके समय भी आनन्द ही बुद्धके पास था। बुद्ध कई बार हल्का विनोद करके उसका मजाक भी उड़ाते।

रिश्तेमे आनन्द बुद्धका चचेरा भाई था। देवदत्त भी चचेरा भाई ही था। पर बुद्धपर दोनोंके प्रेममे कितनी भिन्नता थी! बुद्ध ग्रन्थोमे बुद्ध और आनन्द के संवाद अनेक स्थानोपर मिलते है। बुद्ध अपनी मनोव्यथा बहुधा आनन्दसे ही कहा करते थे।

बुद्ध योगी थे, ज्ञानी थे और उन्होने संसार त्याग दिया था, तथापि मनुष्योके पाससे दूर नहीं भागे। बल्कि वे नित्य बहुजन समाजकी ओर ध्यान रखते। हरेकके जीवनमे स्पर्श करते। लोगोके सुख-दुखोमे समरस होते। दिन-रात उनके पास लोगोकी भीड लगी ही रहती थी। लोगोंके अथवा शिष्योके बीच बैठकर विचार-विनिमय करते। अन्य लोगोसे बाते करनेमे उन्हे आनन्द होता था। बुद्ध धर्मके तत्त्व क्या है। इससे भी अधिक बुद्ध कैसे है, इस बातकी चर्चा उस समय देशभरमे शुरू थी। बुद्ध धर्मकी विजय बहुत करके उनके व्यक्तित्वकी विजय थी। निर्मल मन, स्नेहपूर्ण व्यवहार, अत्यन्त करुणा, राजसी रूप, किसीसे भी नम्रता पूर्वक बोलकर उसे अपने आप विचार करनेके लिए प्रेरित करनेके कारण उनके पास सर्वसाधारण से लेकर राजा-महाराजा तक सभी आते थे। नर्तकी आम्रपालीसे लेकर सम्राट बिम्बसार तक सबको वे समान दृष्टिसे देखते।

हनुमानके बिना जिस प्रकार रामायण पूरी नहीं हो सकती, उसी प्रकार सारीपुत्त और मोगल्लन् दो शिष्योंके बिना बुद्धकथा पूरी नहीं हो सकती। ये

दोनोंही बुद्धके अत्यंत प्रिय शिष्य थे। वे जातिके ब्राह्मण, वेद-उपनिषद, शास्त्र-पुराण आदिके विद्वान थे। शुरूमे वे संजय नामक मुनिके पास थे, पर वहाँ उन्हें समाधान न हुआ, इसलिए इधर-उधर भटक रहे थे। एक दिन प्रात:काल राजगाह (इसे ही राजगीर या राजगृह भी कहा जाता है) में भिक्षा माँगते समय सारीपुत्तको एक भिक्षु दिखाई पड़ा। उसके वेष, उसके व्यवहार और इसकी अपेक्षा उसके चेहरेके आध्यात्मिक तेजको देखकर सारिपुत्त चकित हुआ। उस भिक्षुके पास जाकर सारिपुत्तने पूछा कि तुम्हारे गुरु कौन है? "मेरे गुरु शाक्य मुनि (बुद्धको शाक्य मुनि भी कहते) है, उन्हे जन्म-मृत्युसे लेकर मुक्ति मिलने तकके मार्ग ज्ञात हुए हैं।" उस भिक्षुसे यह सुनते ही सारिपुत्त उसके साथ बुद्धके पास गया। बुद्धको देखते ही उसकी अंतरात्माने गवाही दी कि यही वह गुरु है। इसको ढूँढनेके लिए ही मैं जहाँ-तहाँ भटक रहा था। मेरे अंतर्जगत्पर इसीका अज्ञात प्रभाव पड़ा था। सारिपुत्तने बुद्धका पाँव पकड़ा।

सारिपुत्त और मोगल्लन दोनो मित्रोंने आपसमे निश्चय किया था कि उनमेसे जिसको सत्य-संशोधनका मार्ग पहले मिलेगा, वह दूसरे-को बतायेगा। सारिपुत्तने बुद्धके बारेमें मोगल्लनको बताया। मोगल्लन भी बुद्धका शिष्य बन गया। उनकी विकसित बुद्धि, विद्वता और निग्रह, देख-कर बुद्धने दोनोकी ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया। हम दोनोमेंसे गुरुको सबसे अधिक कौन पसद है, इस प्रकार की मजेदार शर्त दोनोमें लगती! पर वे दोनोही बुद्धको समान प्रिय थे। दोनोका गुरुपर और परस्पर एक-दूसरेपर अत्यंत प्रेम था। बुद्धने अपने पुत्र राहुलकी आध्यात्मिक शिक्षाका कार्य उनपर ही सौपा था।

मोगल्लन्

सारिपुत्त और मोगल्लन प्रेममें जैसे जुड़वे भाई थे। पर उनका बाह्य स्वरूप एक दूसरेके विरुद्ध था। मोगल्लन शरीरसे तगड़ा, अत्यन्त बलवान और काले रंगका था। कहते है कि इच्छानुसार आकार धारण करने, अलग-अलग शरीरोमे अपना प्राण डालने आदिकी विद्यामें वह दक्ष था।

सारिपुत्त साधारण कदका गोरा और विद्वान् था। उसका स्वभाव गंभीर, अल्पभाषी था। वह प्रथम श्रेणीका विद्वान् होते हुए भी अत्यत विनम्र था। विहारकी फर्शोंको झाड़ू लगानेमें भी उसे हीनता न महसूस होती।

बुद्धकी मृत्युसे केवल एक महीने पूर्व सारिपुत्तकी मृत्यु उसके जन्म स्थाननाल नामक गाँवमे हुई। एक भिक्षुने उसकी अस्थि और पीला वस्त्र श्रावस्तीमें बुद्धको लाकर दिया। मोगल्लनके विरोधियोने उसका खून कर डाला। कहा जाता है कि अपनी दैवी शक्तिके कारण वह छः वार हत्यारोके हाथसे बचा। पर सातवीं बार किसी भी तरह विहारमें वह असावधानीवश मारा गया। बुद्धकी मृत्युसे केवल दो सप्ताह पहलेही यह घटना हुई। मृत्युसे पहले घायल अवस्थामें वह बुद्धके पास आया और उनके चरणोमे उसने अपना प्राण छोड़ा। इस प्रकार बुद्धके दोनोही प्रिय शिष्य उन्हे पहलेही छोड़कर चले गये।

सॉचीके बौद्धस्तूपमे इन दोनोंका अस्थि-अवशेष सॅम्हालकर रक्खा गया है।
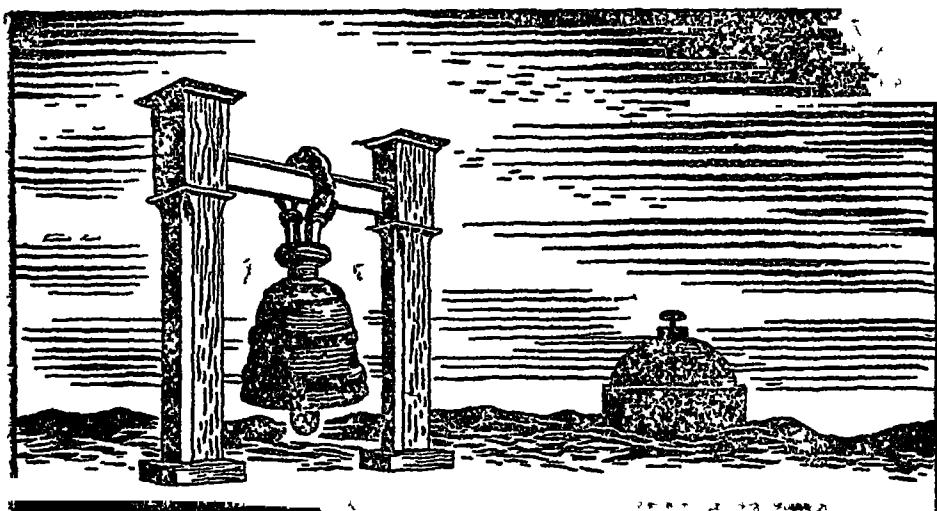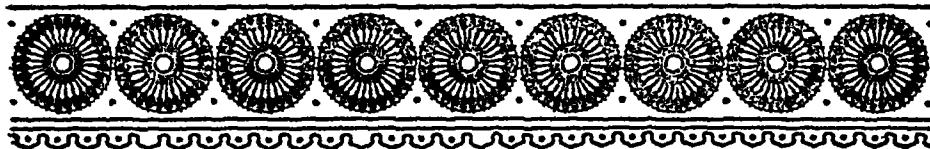
आत्माकी शोध करें !

बुद्धको ऐसा ज्ञान हो रहा था कि अब अपने जीवनका अतिम समय आ गया है। उनकी उम्र ८० वर्ष हो चुकी थी। शरीर कुछ थक चुका था। पिछले पैतालीस वर्षों तक उन्होंने रात-दिन अपने नये धर्मका प्रचार और प्रसार किया था। उत्तर पूर्वमे नैपालकी तराईसे लेकर दक्षिणमे आंध्र तक और मध्यप्रदेश तक उनके पंथकी पताका लहरा रही थी। अनेक राजा-महाराजा उनके इस नये धर्ममें सहयोगी बने थे। ज्ञान-

भण्डारपर किसीका एकाधिकार नहीं और कोई भी नीच नहीं, इन विचारोंके कारण पददलितोंको बुद्धके बारेमे आत्मीयता लगती। उनके बताये हुए अष्टाध्यायी-मार्ग उस समय मनुष्यको प्राप्त होनेवाले तत्त्वज्ञानोमें सर्वश्रेष्ठ था। इसलिए अन्य लोगोंको भी इस पथके बारेमें आकर्षण मालूम हुआ। मनुष्यके मनमे एक प्रकारकी यह गहरी आकाक्षा छिपी होती है कि हम किसीके भी—व्यक्तिके या पंथके हो, किसीसे अपना निष्ठाका संबंध हो।

बुद्धके समयमे भारतकी क्या अवस्था थी। उस समय सामाजिक और राजनैतिक दृष्टिसे विघटन शुरू था। जहाँ जहाँ संघर्ष हो रहे थे। वैदिक धर्मके यज्ञ आदि बातोंका विकृत स्वरूप होकर लोगोकी धार्मिक श्रद्धा नष्ट हो चुकी थी। सर्वसाधारणकी मनस्थितिको देखते हुए और ऐतिहासिक परिस्थितिकी दृष्टिसे नई श्रद्धा, नया धर्म और नये अवतारके जन्मके लिए यह समय अत्यत अनुकूल था। समयकी इन लहरोंपर ही बुद्ध और उनका धर्म ऊपर उठा। इद्रप्रस्थ और अयोध्याका महत्त्व कम हो गया। पाटलिपुत्र (वर्तमान पटना) नगर भारतका मुख्य केद्र बना।

बुद्ध-धर्मके इस नये प्रवाहने नये विचार उपस्थित किये। इस पंथमें मनुष्यकी संपूर्ण वृत्तियोके विकासके बीज उगे। नई निष्ठा प्राप्त हुई। जीवनकी कोपले निकलीं। साहित्य, शिल्प आदि कलाओंको प्रोत्साहान मिला। आगे चलकर तो बुद्धधर्मने इस क्षेत्रमें अपूर्व कार्य किया। वास्तवमे आज भी भारतीय कला और संस्कृतिके सबधम्में बोलते समय हमें बौद्ध कालीन कला, शिल्प और संस्कृतिके बारेमें बोलना पडता है। अजन्ता, अलोरा आदि स्थानोंकी बौद्धधर्मकालीन शिल्पकृतियाँ अमर है। बुद्धके रहते हुए ही उनके धर्मका यह विकास हो चुका था।

बुद्धने स्वयं कुछ नहीं लिखा। वेद, उपनिपद, अथवा बादमें निर्माण हुए बायबल, कुरानके समान बुद्धका कोई भी आधारभूत ग्रंथ नहीं। उनके पंथने देव नहीं माना और पोप जैसा कोई धर्मगुरु नियुक्त नही किया। बुद्धके रहते हुए वे ही सर्वश्रेष्ठ अधिकारी और गुरु थे। दीपकसे दीपक जलानेके समान एकसे दूसरेके अन्तःकरणमें इस तत्त्वक प्रसार हो रहा था। कालान्तरमें देशदेशान्तरो तक बुद्धके अनुयायी बने। आज भी संसारके एक चौथाई लोग इस धर्मको माननेवाले है।

अपनी आयुके अतिम समय बुद्ध हमेशा शिष्योके साथ रहते। उनसे खूब बाते करते। स्वय होकर प्रत्येकसे शका और प्रश्नोके बारेमें पूछते। एक बार कौशांबीके शीशम बनमे घूमते हुए बुद्धने शीशम वृक्षके कुछ पत्ते अपने हाथमें लिए और शिष्योसे बोले "भिक्षुओ, मेरे हाथके पत्ते वनके पत्तोकी अपेक्षा कम हैं या अधिक?"

"आपके हाथोके पत्ते बहुत ही कम है।" शिष्योने कहा।

बुद्ध—"ज्ञानके बारेमे भी ऐसा ही है। इस संसारमें अपार ज्ञान भरा है। उसमेसे थोड़ा-सा मैने प्राप्त किया और उसमेसे जरा-सा तुम्हे दे सका। अब तुम्हे स्वय अधिक ज्ञान प्राप्त करना है। शिष्यो! अन्य बातोके समान ज्ञान भी व्यक्ति सापेक्ष है। अपने उद्धारका मार्ग तुम कैसे ढूँढ सकते हो! मैने केवल दिग्दर्शन कराया। बुद्ध हूँ तो भी तथागत इतनाही कर सकता है।"

इतनेमें एक शिष्यने पूछा—"भगवन्, सबसे पूज्य किसको माना जाय और राजाधिराज कौन?"

बुद्धने उत्तर दिया, "हे भिक्षु, धर्म सर्वश्रेष्ठ है। वही राजाधिराज भी है। धर्ममें सब कुछ आता है। धर्मका मतलब है, इस संपूर्ण चराचरसे भरे

…, संसारकी व्यवस्था, प्रकृतिका नियम, कार्य और कारण-भावकी शृंखला। धर्मही सत्य और धर्म ही न्याय है।"

दूसरे एक शिष्यने पूछा, "आत्मा क्या है? और आत्माका स्वामी कौन है?"

• बुद्ध—"आत्माका स्वामी आत्मा ही है। दूसरा कौन होगा? आत्मा यानी आकार, भावना, विचार आदि बाते नहीं। वृक्षोंके पत्ते, फूल, पंखुड़ियाँ आदि जिस प्रकार वृक्ष नही है, वैसे ही मनुष्य देह और उसकी विविध संवेदना भी आत्मा नहीं। आत्मा एक स्वयंभू, स्वयंसिद्ध, चिरन्तन तत्त्व है। यह मेरा नहीं, यह मैं नहीं, मैं यह नही का महत्त्वका सूत्र ध्यानमे रखकर ही स्वयं आत्माकी खोज करो। यही अपना कर्तव्य है।"

पूर्व जन्मकी हार्दिक स्मृति
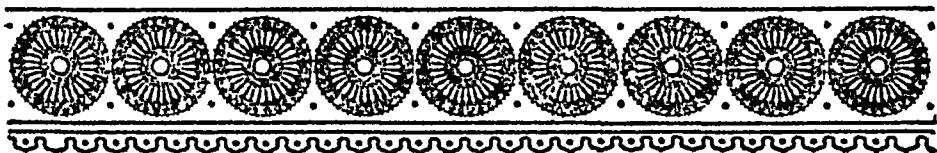
एक दिन सायंकाल लोग बैठे थे। आनन्दने पूछा, "भगवन्, आप कहते हैं कि जन्मके साथ जीवन शुरू नहीं होता अथवा मृत्युकेसाथ वह खतम नहीं होता। हमारा वर्तमान जन्म केवल एक सम्बधके कारण होता है और प्रत्येक प्राणीमात्र अपने पूर्वजन्मके कृत्योसे वर्तमान अवस्थाको पहुँचा है तथा आजके कृत्यों द्वारा उसका भावी जन्म निश्चित होता है। हम स्वर्ग, नरक आदि अवस्था भी मानते है। पर हमे अपना एक भी पूर्वजन्म याद नहीं आता अथवा आगेका भी कुछ समझमे नहीं आता, क्यों?"

बुद्ध—" आनन्द, तूने बहुत बडा प्रश्न पूछा। पहली बात यह है कि जन्म और मृत्यु यह एक ही सिक्केके दो बाजू है। मृत्युका कारण कोई भी रोग, दुर्घटना आदि नहीं, बल्कि जन्म ही मृत्युका कारण है। इस कार्य-कारणसे आत्मा हमेशा इधरसे उधर और उधरसे इधर फेकी जाती है। नया जन्म अर्थात् सिर्फ नई अवस्था या नया वस्त्र है। अब पिछले जन्मकी याद हमें क्यो नहीं आती, इसका कारण यह है कि हमारी भौतिक स्मरणशक्ति आध्यात्मिक स्तरको छेदकर पहलेके संसार या स्मृतिको प्राप्त करनेमे असमर्थ होती है। आत्मिक शक्तिसे तुम अपने पूर्वजन्म और भावी जन्मको जान सकते हो।"

एक शिष्य—" आप अपने पूर्वजन्मके बारेमे हमे कुछ सुनाकर उपकृत करेगे क्या ?"

इस प्रश्नपर बुद्ध कुछ हँसे। इसके बाद क्षण भर अन्तर्मुख होकर बोले " शिष्यो अपने पूर्वजन्मकी वास्तविकता बताता हूँ। शायद उससे अपने उद्धारकी कुछ कल्पना तुम्हे हो सके।

"दो जन्म पहले मै बन्दर था। अपने जाति भाइयोंके सुखकी ओर मै हमेशा ध्यान रखता। एक बहुत बड़े आमके वृक्षपर हम सब रहते थे। उस वृक्षमे बहुत मीठे फल लगते थे। एक बार उसका एक आम गगाके प्रवाहमे गिरकर बहने लगा। आगे स्नान करते हुए काशीके राजाको वह दिखाई पड़ा। उस फलको देखते ही राजाको प्रसन्नता हुई। वह विचार करने लगा कि इतना बड़ा और मीठा आम कहाँ होगा ? प्रवाहके उल्टी दिशाकी ओर उसने अपने सेवकोको भेजा और स्वयं उस वृक्षकी खोजमे निकला। आखिर उन्हे हमारा वृक्ष मिला। वृक्षपर बहुतसे बन्दरोको बैठा हुआ देखकर उसने उन्हे बाणसे मारनेकी आज्ञा दी। बन्दर काँपने लगे। क्योकि इस ओर राजाके सेवक

खड़े थे और दूसरी ओर गंगाका प्रवाह था। वृक्षपरसे कूदकर निकल जाना संभव न था। मैने एक बड़ा-सा बॉस लिया और गंगाके प्रवाहपर उसका पुल बनाया। पर वह थोड़ा-सा छोटा था। अन्तमे वह बाँस मैने अपनी पीठसे बाँधा और एक किनारा पकड़कर खड़ा रहा। अब बॉसका दूसरा सिरा दूसरे किनारेपर पहुँचा। बन्दरोको मैने धड़ाधड़ कूदकर दूसरे किनारे निकल जानेकेलिए कहा। एकके पीछे एक सभी बन्दर सुरक्षित स्थान पहुँच गये। कुछ भूलसे मेरे ऊपर भी कूदकर गये। मेरा शरीर कुचल रहा था। पर मैं बाँस पकड़े रहा। उन सबमे एक तगड़ा बन्दर पीछे रहा। वह सहसा धड़ामसे मेरे ऊपर कूदा। वह दूसरी तरफ पहुँच गया, पर मेरी मृत्यु हो गई। भिक्षुओ, वही बन्दर देवदत्त है, यह आज मै तुम्हे बताता हूँ।"

इसके बाद मै एक राजपुत्र हुआ। मेरे पास वर्षा लानेवाला एक दैवी हाथी था, मैने उसे दानमे दे दिया। इसके बाद मेरे राज्यमे अकाल पड़ा। लोग मेरी उदारतापर नाराज हुए। मुझे और मेरे परिवारवालोको निष्काशित किया गया। उस दशामें अनेक कष्ट उठाते हुए हम रेगिस्तानसे जा रहे थे। रास्तेमे मुझे फिर कुछ याचक मिले। मेरे पास जो कुछ भी था, मैने उन्हे दे दिया। अन्तमें मैने अपनी पत्नी और बच्चोको भी दानमे दे दिया। और रेगीस्तानमें ही मर गया। उसके बादकी अवस्थामे मै बोधिसत्त्व (भावी बुद्ध) के रूपमे रहता था। अब मेरा अंतिम जन्म है।
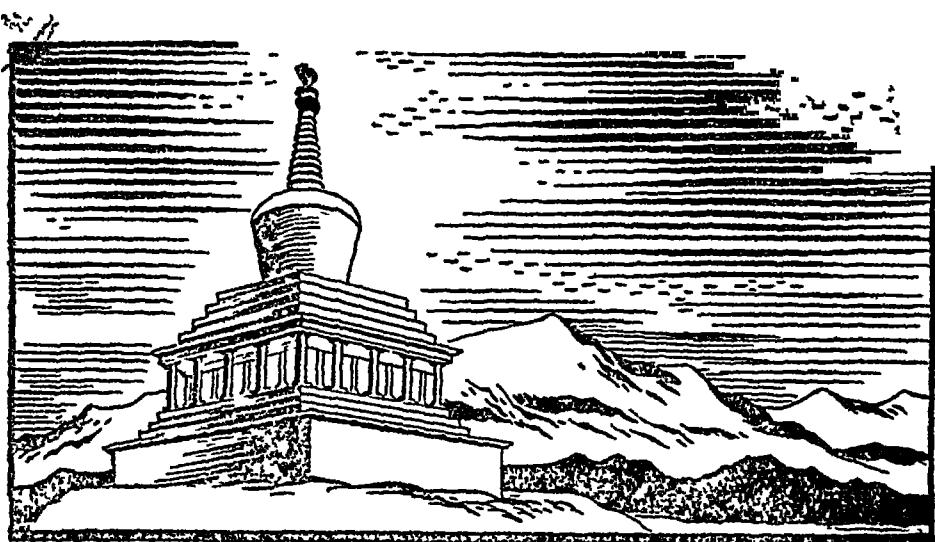
" भवसागरके टापू बनो ! "
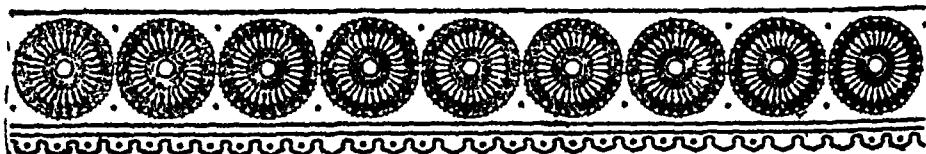
बुद्ध ८० वर्षके हो चुके थे। पैतालीस वर्षों तक देशके कोने-कोनेमे घूमकर उन्होने अपने नये धर्मका प्रसार किया। कितने ही अनुयायी बनाये। पर अब शरीर थक चुका था। यात्राके कष्ट होगे, इसलिए आनन्द अत्यंत चिन्तित था।

" प्रभु, आपके बाद धर्मका क्या होगा ? हमें कुछ आदेश दीजिए।" आनन्दने एक दिन बुद्धसे कहा।

आनन्दकी यह बाते सुनकर बुद्ध गंभीर हुए। जरा रुककर बोले, "आनन्द संसारको मै ही हमेशा मार्ग दिखाता रहूँगा, भावी पीढ़ीके लिए आदेश दूँगा, ऐसा कोई समझता हो तो बुद्ध कैसा? अब मै थोड़े दिनोके लिए ही हूँ। यह सत्य है कि इसके बाद मै तुमसे दूर चला जाऊँगा। आजसे तीन महीनेमे मै निर्वाण प्राप्त करूँगा।"

बुद्धके यह कहते ही पृथ्वी काँप उठी। क्यो कि! उस महापुरुषने अपने ऐहिक समाप्तिका दिन स्वय ही घोषित कर दिया था। आनन्दकी आँखोमे आँसू आ गये, उसे देखकर बुद्ध बोले—

"आनन्द, इसमें रोने जैसी कोई बात नहीं। इस संसारमे सभी सजीव, निर्जीव वस्तु अशाश्वत है। प्रत्येक क्षण उनमे परिवर्तन हो रहा है। पर्वत भी अणुअणुमे बदल रहे है। जन्म, विकास, ह्रस और विनाश अथवा मृत्यु के चक्र सबकेलिए लागू है। रोग मृत्युका कारण न होकर जन्मही मृत्युका कारण है। जन्म याने दुख और मृत्यु याने दुख। मैने तुम्हें एक बात बताई दुख और उसका विनाश। आनन्द, यह भी दुखकी ही दूसरी आवृत्ति है। जन्म-मृत्यु ही इस संसारका सबसे बड़ा दुख है। ज्ञानप्राप्ति और बोध उससे छुटकारा पानेका मार्ग है। पर यह बोध कैसे होगा? आनन्द, इस भवसागरमें तुम्हे स्वयही आश्रय-स्थान – टापू बनना चाहिए! बाह्य आश्रय उपयोगी नही! आत्मा, धर्म और सत्यका आश्रय लो।

बुद्ध और उनके शिष्य घूमते-घूमते चुंद नामक एक लोहार शिष्यके गॉव आये। चुंदने बुद्धको भोजनके लिए कहा। उसका तैयार किया हुआ सूअरका मांस और भात बुद्धने प्रसन्न चित्तसे खाया। परन्तु इसके बाद बचे हुए अन्न उन्होने किसीको भी न देकर जमीनमे गाड़ देनेको कहा। कुछ

लोग ऐसा निष्कर्ष निकालते हैं कि वह मांस बहुत खराब अथवा आधा-कच्चा था।

चुंदके घरसे वापस लौटते हुए; रास्तेमें ही बुद्धको अस्वस्थता मालूम होने लगी। " आनन्द, तुम आगे जाओ और एक स्थानपर तुम्हे दो साल वृक्ष दिखाई पड़ेगे, वहाँ मेरे लिए विस्तर तैयार करो। तकिया उत्तर दिशामें रखना! ऐसी आज्ञा देकर वे नीचे बैठे! आनन्दकी छाती धडकने लगी। उसके पाँव जगहसे हिलते न थे, पर किसी भी तरह वह आगे बढा।

कुछ देर बाद बुद्ध अन्य शिष्योके साथ उन साल वृक्षोके पास पहुँचे और विस्तरपर पड गये। वसन्त न होते हुए भी वनमें फूलोकी सुगंधि उठ रही थी। धूपकी गर्मी मन्द पड गई थी। सृष्टिमे एक प्रकारकी निस्तब्धता छा गई थी। क्षणभर आँखे बद करके विश्राम लेनेके बाद बुद्धने सब शिष्योको बुलाकर कहा, " तुम लोगोमेंसे किसीको कुछ शंका है क्या ? " उन्होने पूछा। एक शिष्यने धैर्यपूर्वक पूछा, " भगवन्, निर्वाण यानी क्या है ? "

बुद्धने उत्तर दिया, " निर्वाण यानी एक ऐसा प्रांत है जहाँ पृथ्वी नहीं, पानी नही, प्रकाश नही, हवा नहीं, आकाश नही, दीर्घ काल नहीं, भान नहीं, अज्ञान या शून्यता भी नहीं। जहाँपर सूर्य, चंद्र, ग्रह, तारे, इहलोक, परलोक, जन्म-मृत्यु कुछ नहीं। वहाँ दुखका अन्त है। अन्तिम सत्य और शाश्वति है। परन्तु निर्वाणका वर्णन करना सम्भव नहीं। जिसकी कल्पना हो सके वह निर्वाण नहीं। निर्वाण कल्पनासे परे है। इस प्रकारके परमश्रेष्ठ सत्यके साक्षात्कारके बारेमे मौन ही रहना अच्छा होगा। "

दूसरा शिष्य— " पर निर्वाणसे परे कुछ है क्या ? "

बुद्ध-" किसी भी वात और कल्पनाका अन्त नहीं। निर्वाण भी अनन्त है। इससे भी परे महापरिनिर्वाण तथा उससे भी परे कुछ और है।

"व्यावहारिक भापामें कहा जाय तो निर्वाणका अर्थ लोभ, द्वेष और मोहका विनाश तथा मनकी शान्ति है।"

इसके बाद बुद्धकी आँखे बन्द हो गई। समाधि लगी। "प्रिय शिष्यो, मै जा रहा हूँ। पर तुम लोग दुखी मत होना। घबराना नहीं। अष्टाग नीतिमार्गका प्रसार करना। सब पदार्थोंका नाश निश्चित ही है। समझ बूझकर स्वय अपनी मुक्ति कर लो। धर्मपर श्रद्धा रक्खो।" यही उनके आखिरी शब्द थे। इसके बाद बुद्धने निर्वाण प्राप्त किया। सर्वत्र शान्ति फैल गयी। काशीसे १२० मीलकी दूरीपर कुशीनारा राजके समीप यह घटना हुई। बुद्धका जन्म और निर्वाण दोनोंही प्रकृतिकी गोदमें वृक्षके नीचे हुआ।

बुद्धके निर्वाण-समयके सम्बंधमे कुछ मतभेद है। मॅक्समुलर जैसे पंडित ईसा पूर्व ४४७ वताते है। परन्तु अब बहुतसे इतिहास संशोधक ईसवी पूर्व ४८३ निर्वाणका वर्ष मानते हैं।

"जिन्होने जन्म पाया है और जो जो अस्तित्वमें है, उन सबमें विनाशके बीज है और उन सबका नाश अनिवार्य है। बुद्धका यह
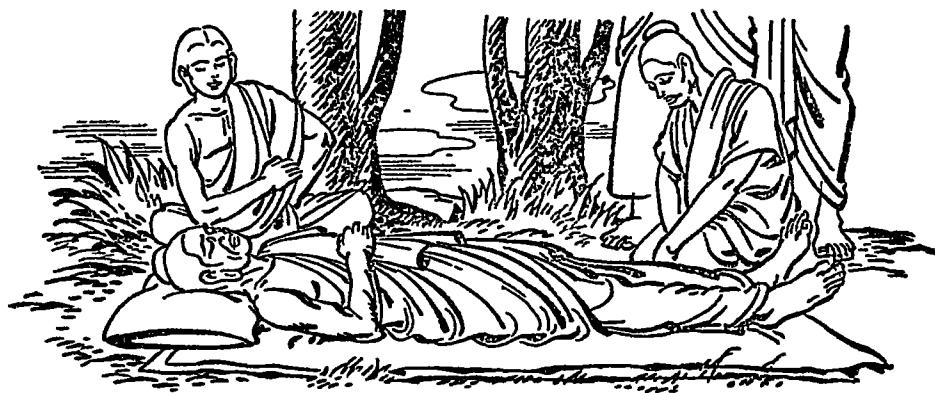
इसके बाद बुद्धकी आँखे बन्द हो गई। समाधि लगी।

पार्थिव शरीर भी अब पंचमहाभूतोमें विलीन होगा। भिक्षुओ, प्रभुके कथनानुसार शोक छोड़ो; बुद्धका, संघका और धर्मका जयजयकार करो।" सबमें वृद्ध भिक्षु अनिरुद्धके इस प्रकार कहनेपर आनन्द और अन्य भिक्षुओंने शोक त्यागा। सात दिनों बाद बुद्धका अग्नि-संस्कार किया गया। राख दस भागोंमें बाँटी गयी। इसके पश्चात् अलग-अलग स्थानोमें बड़े बड़े स्तूप अथवा पगोड़ा बनवाकर उनमें यह पवित्र अस्थि-अवशेष यत्न पूर्वक रक्खी गई। बुद्धका जन्म-स्थान लुम्बिणीवन, निर्वाणस्थान कुशीनारा, बोधिप्राप्तिस्थान बुद्धगया, प्रथम प्रवचन-स्थान सारनाथ और सारीपुत्त तथा मोगल्लनके अस्थि-अवशेषके कारण साची अब भारतके यात्रा-स्थान बन चुके है।

आज २५०० वर्ष गुजर जानेपर भी संसार भरमे बुद्धकी विचारधार फैल रही है। किसी भी प्रकारके धार्मिक कडुएपन, सैनिक शक्तिकी सहायता अथवा संगठित प्रयत्नके बिना भी बुद्धधर्मका प्रसार निरन्तर बढ रहा है। भारत जैसे देशमे हिन्दू धर्मके अन्तर्गत बुद्धधर्म विलीन हुआ, जिसके कारण हिन्दू धर्म अधिक सुसंपन्न बना। चीनमे ताओ, कन्फूशियन धर्मोंको बुद्धके उपदेशोका तेज प्राप्त हुआ। अनेक देशोमें बुद्ध विचारोने धर्म, संस्कृति और कलाके क्षेत्रमें नया युग निर्माण किया। आज राजनैतिक क्षेत्रोमे हायड्रोजन बमकी प्रतिस्पद्धाके लिए 'पंचशील' के रूपमें बुद्धके नीतितत्त्व व्यक्तिगत स्तरसे अंतर्राष्ट्रीय स्तरपर आ रहे है। बुद्धजयतीके लिए इसकी अपेक्षा अधिक आनंददायक घटना दूसरी कौन-सी हो सकेगी?

◉ ◉ ◉